सहजानंद शास्त्रमाला

रत्नकरंड श्रावकाचार प्रवचन

भाग 3

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

श्री स्वामी समन्तभद्राचार्य कृत

श्री रत्नकरण्ड श्रावकाचार

टीकाकार :
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द" महाराज

सहजानन्द स्वाध्याय मण्डल
ग्रन्थ क्रमांक........................

प्रकाशक
सुनील कुमार जैन
मन्त्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

द्वितीय संस्करण
११००

सन् १९९६

मूल्य
60 रु

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रस्तावना

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

भारतीय धर्मों में जैन धर्म का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उसके अहिंसा और अपरिग्रहवाद आदि सिद्धान्त बहुत ही प्राचीन हैं। इसके प्रवर्तक भगवान ऋषभदेव हैं। जिन्हें आदि ब्रह्मा भी कहा जाता है। जैन सिद्धान्त ने ही लोक में समता-समानता अथवा विश्व प्रेम की अनुपम धारा को जन्म दिया है। अनेकान्त के व्यवहार द्वारा उनके पारस्परिक विरोधों का निरसन करता हुआ उनके जीवन में समन्वय और सहिष्णुता का आदर्श पाठ सिखाता है।

जैन धर्म में भावों की प्रधानता है, उस में परिणामों की अच्छाई, बुराई का जो स्वरूप एवं फल बतलाया गया है और जो जीवन की उन्नति अवनति का स्पष्ट प्रतीक है जिसके द्वारा नैतिक एवं आध्यात्मिक रूप से मानव अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकता है और पूर्ण विकास तक पहुँच सकता है।

जैन धर्म में जहाँ भावों की प्रधानता है वहाँ उनके आचार को भी प्रमुख स्थान दिया गया है। उसके सिद्धान्त चार भागों में विभक्त हैं जिन्हें चार अनुयोग भी कहते हैं, चरणानुयोग में जीवों के आचार मार्ग का विधिवत कथन है। इसमें गृहस्थ और साधुओं के आचार-विचार का विवेचन है। प्रस्तुत ग्रन्थ भी आचार मार्ग से सम्बन्ध रखता है। इसी कारण इस का नाम **"रत्नकरण्डश्रावकाचार"** है। ग्रन्थ में जैन श्रावक के आचारों का सांगोपाङ्ग कथन दिया हुआ है। यह ग्रन्थ उपलब्ध श्रावकाचारों में सब से प्राचीन है। ग्रन्थ में आप्त-आगम और गुरु के लक्षणों की परिभाषायें तथा रत्नत्रय, द्वादश व्रतों और प्रतिमाओं के लक्षण और सम्यग्दर्शन की महत्ता का स्पष्ट कथन किया है साथ ही जैन तीर्थंकर केवली की धर्म देशना को सुन्दर उदाहरण द्वारा पुष्ट किया गया है।

इस ग्रन्थ के कर्ता प्रतिभा सम्पन्न विद्वान, आचार्य, तर्कशिरोमणि और महान योगी थे आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी। आप में वाद करने की अद्‌भुत शक्ति थी। आप का व्यक्तित्व महान और प्रज्ञायें असाधारणता थी। आप क्षत्रिय राजपुत्र थे। आप का बाल्यकालीन नाम शान्ति वर्मा था। उन्होंने सांसारिक वैभव निःसार समझकर छोड़ दिया था। आंचार्य समन्तभद्र स्वामी जी का समय विक्रम की दूसरी तीसरी शताब्दी माना जाता है।

रत्नकरण्ड श्रावकाचार पर जो पूज्य गुरुवर्य्य श्री १०५ क्षु० मनोहर जी वर्णी सहजानन्द जी महाराज ने प्रवचन दिये है वह इतने लोकप्रिय हुए कि स्वाध्याय प्रेमियों की मांग को देखते हुए पुनः प्रकाशित कराये जा रहे है एक-एक सूत्र पर यह प्रवचन श्री सहजानन्द जी के जीवन की आत्म साधना अथवा ज्ञानाभ्यास का अनुपम फल है। इन प्रवचनों के अवलोकन से महाराज श्री की आन्तरिक भावना का परिज्ञान और उनकी लगन, कर्तव्यनिष्ठा, उत्साह तथा आत्म जागृति का भान सहज में हो जाता है।

पाठक प्रवचनों की भाषा विशेषता और विवेचन शैली का स्वयं ही अनुभव कर सकते है। इस प्रकार यह प्रवचन गृहस्थों के लिए बहुत ही उपयोगी है। प्रवचनों में कहीं-कहीं पर चरणानुयोग के विषय को उसके पात्र की सीमा से कुछ ऊँचा कहा गया हैं। अर्थात् आचार मार्ग का विधि विधान धारण करने वाले व्यक्ति की अपेक्षा न कर उच्चादर्श से प्रेरित होकर निरुपित किया गया है। क्योंकि श्री सहजानन्द जी महाराज का आशय विशुद्ध और वस्तु स्थिति के दिखलाने का रहा है।

इस संस्करण को नया रूप देने में मान्यवर खेमचन्द जी जैन सर्राफ मन्त्री श्री सहजानन्द शास्त्र माला ने अथक परिश्रम किया है, जो अत्यन्त प्रशंसनीय है, इसके लिए वह बधाई के पात्र हैं। मेरी तो यही भावना है कि सभी धर्म स्नेही बन्धु इस ग्रन्थ का पठन-पाठन रूप स्वाध्याय से सम्यग्दर्शन प्राप्त कर अपने जीवन को सफल बनावें।

सुमेर चन्द जैन
सम्पादक
"वर्णी प्रवचन"

सहजानन्द स्वाध्याय मण्डल
ग्रन्थ क्रमांक..............................

Version 1

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूज्य श्री १०५ क्षु० गुरुवर्य्य मनोहरजी वर्णी

सहजानन्द महाराज

जन्म स्थान—दुमदुमा (जिला टीकमगढ़), बुन्देलखण्ड (म० प्र०)

जन्म तिथि—कार्तिक कृष्णा दशमी ब्रह्ममुहूर्त सं० १९७२, सन् १९१५

Report any errors at vikasnd@gmail.com

साहित्य निर्माण—१९४२ से १९७८ तक, ग्रन्थ-संख्या लगभग ५००

शरीरत्याग काल—३० मार्च, सन १९७८ त्यागी भवन सदर मेरठ।

http://www.jainkosh.org

रत्नकरण्ड प्रवचन तृतीय भाग

सल्लेखना अधिकार

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निः प्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः॥ १२२॥

उपसर्ग और दुर्भिक्ष, जरा रोग में जो निःप्रतिकार।
धर्म हेतु तनमोचन, सो कही सल्लेखना आर्य॥

जीवका एकेन्द्रियभवोंमें अनन्तकालका यापन—हम आपको आजका यह मनुष्यभव बहुत कालमें दुर्लभतासे मिला है। इस भवके अतिरिक्त हम आपकी बहुत पहलेकी स्थिति निगोदिया जीवोंकी थी। निगोदजीव वे कहलाते हैं जिनका बहुत सूक्ष्म शरीर है। एक श्वांसमें १८ बार जन्म मरण करते हैं और वह भी श्वांस कौनसी? नाड़ीके एक बार उचकनेमें जितना समय लगता है उतने समयका श्वांस। उतनी ही देरमें १८ बार मरण हो गया। उसी का नाम जन्म है, और सिर्फ एक स्पर्शनइन्द्रिय है। कितना सा ज्ञान, कितना कठोर दुःख। एक दृष्टिसे देखें तो नरकोंसे कठिन दुःख हैं निगोद जीवोंका। किसीको कोई पढ़ा लिखा व्यक्ति गाली देता है तो वह यों कहता है कि तू नरक निगोद जायगा। तो नरक जानेकी भी गाली, निगोद जानेकी भी गाली। अब इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है। नारकी जीव तो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय होते, कितने ही नारकी सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेते, सम्यग्दृष्टि होते, पर निगोदजीवोंकी तो बड़ी दुर्दशा है। यों समझिये जैसे कि अचेत से हों। तो ऐसी स्थितिमें हम आपने अनन्तकाल व्यतीत किया। वहांसे सुयोग से निकले तो पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, प्रत्येक वनस्पति इन स्थावरोंमें गए। ये निगोद भी एकेन्द्रिय हैं, किन्तु साधारण वनस्पति है सो वहां भी बड़ी दुर्दशायें हैं। पृथ्वी हुए तो किसी ने कूटा, खोदा, पकाया। लोहा, सोना, चांदी आदिक निकालनेके लिए पृथ्वी को तो भट्टियोंमें पकाया जाता है। जल हुए तो गरम किया, खौलाया, अनेक प्रकारके कष्ट हम आपने भोगे, पर आज कुछ पुण्योदय है, भोग सामग्री मिली है तो पूर्वभवके दुःखोंका स्मरण नहीं रखते। अग्नि हुए तो उसपर पानी डाला, उसे बंद हवामें कर दिया, वहां भी दुःख। वायु हुए तो उसे रबड़में रोक दिया गया, या पंखे द्वारा बिलोया गया, वहां भी कठिन दुःख। वनस्पतिके दुःख तो देखते ही हैं। फलफूल छेदना भेदना पकाना, तो ऐसे कठिन दुःख पाये।

त्रस जीवोंकी दशामें भी कष्टोंकी भरमार—एकेन्द्रियसे निकले तो दोइन्द्रिय हुए, तो वहां इतनी प्रगति हुई कि जिह्वा मिल गई। मगर उस जिह्वाका करना क्या है? थोड़ा मिट्टी वगैरह खा लेते।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

केंचुवा, जोक, शंख, कौड़ी, सीप ऐसे दो इन्द्रिय जीव हुए तो वहां भी कठिन दुःख। मछली मारने वाले लोग डोरीमें लोहेके पास केंचुवा चिपका देते हैं और उसे पानीमें डाल देते हैं, मछली उस केंचुवेको खाती है। कितने ही हिंसक क्रूर लोग उन केंचुवोंको पीस डालते हैं तो कितने कठिन दुःख पाये। वहांसे कुछ प्रगति हुई तो तीन इन्द्रिय जीव बने। एक नाक और मिल गई, जैसे कि चींटा, चींटी, खटमल, बिच्छू, कानखजूरा आदिक जिनके चारसे अधिक पैर होते हैं, प्रायः ऐसे जीव तीन इन्द्रिय होते हैं, तो वहां भी बड़े दुःख। जो उड़ते नहीं और चारसे अधिक पैर हैं, ऐसे जीव मिलेंगे तीनइन्द्रियमें। वहां भी कूटा मारा। बिच्छुवोंको तो लोग कुचल देते हैं। कुछ और प्रगति हुई तो चार इन्द्रिय जीव हुए, इसमें आंखें और मिल गईं, सब कुछ देखने लगे, बस इतनी भर प्रगति हुई, पर मनके बिना सब बेकार है। उन्हें भी लोग जला देते हैं, पीस देते हैं, वहां भी बड़े दुःख हैं। वहांसे कुछ प्रगति हुई तो असंज्ञीपञ्चेन्द्रिय हुए, और प्रगति हुई तो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय हुए, पशु पक्षी हुए। अब पशुपक्षियोंकी भी दुर्दशायें देख लो, पशु कितना जुतते पिटते बोझा ढोते, और जब किसी कामके नहीं रहते तो कसायियोंको दे दिये जाते। क्या जिन्दगी है उनकी? भेड़, बकरी, मुर्गा, मुर्गी आदिककी दशायें देख लो, कितना इनकी निर्मम हत्यायेंकी जा रही हैं। ये सब दुर्दशायें हम आप जीवोंकी भी हुईं।

वर्तमान सुयोगसे हितप्राप्तिका उपाय बनानेका कर्तव्य—उक्त सब दशाओंसे पार होकर आज हम आप मनुष्य हुए हैं, सो मनुष्य होकर केवल एक ही काम है कि धर्मबुद्धिसे रहें, मंद कषायसे रहें, किसीका बुरा न विचारें, किसीसे ईर्ष्या न करें, चोरी न करें, सबके प्रति विनयभावसे रहें। जैसे चार भावनायें कही हैं—सब जीवोंमें मित्रता रखना, गुणियोंको देखकर उनमें प्रमोद रखना, दुःखियोंको देखकर दया करना, उद्दण्डताका व्यवहार करने वालोंके प्रति मध्यस्थभाव रखना। और विशेष प्रगतिके लिए वस्तुस्वरूपकी जानकारी करना, और उसका प्रयोग करें अपने आपपर। प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र सत् हैं। उनका उन ही में अपनी गुण पर्याय है। एकको कुछ भी चीज दूसरेमें प्रवेश नहीं करती। फिर किसी दूसरेसे मेरेमें क्या सुख और क्या दुःख? जितने सुख दुःख होते हैं वे हमारे ही उपयोगके उस तरहके परिणमनसे होते हैं। दूसरा कोई मेरा न विरोधी है और न बन्धु है। मैं सबकुछ अपना ही जिम्मेदार हूं, जैसा करता हूँ, वैसा भोगता हूं। घटाइये अपने आपपर। और वास्तवमें अमूर्त ज्ञानमात्र हूं। यह शरीर, ये उपाधियां, ये कर्मविकार मेरेसे अत्यन्त पृथक हैं, मेरे स्वरूप नहीं है, मैं तो अमूर्त हूं, ज्ञानमात्र हूं, मेरा यहां कौन पहिचानने वाला है। किसमें राग करना किसमें द्वेष करना, किसका बुरा मानना। मैं स्वयं अपने आपमें परिपूर्ण हूं। मेरा सबकुछ मेरेमें है, मेरेसे बाहर नहीं, बाहरका मेरेमें कुछ नहीं। निर्णय बनाकर मनन करके कभी सम्यक्त्वलाभ लेना, सम्यक्त्व लाभ लेकर चारित्रमें बढ़ना ये मनुष्यजन्मके कर्तव्य हैं।

विनश्वर देह पाकर तप संयमके आचरणोंसे नरभव सफल करनेका कर्तव्य—लोग प्रायः प्रमादमें या विषयोंकी आसक्तिमें व्रत आदिकसे उपेक्षा रखते हैं, पर यह तो जानें कि इस शरीरका आखिर होगा क्या जिस शरीरसे प्रेम रखा जा रहा है। जिसको जरा भी कष्ट नहीं होने देते। कहते कि रात्रिको न खायेंगे तो कैसे काम चलेगा, सर्विस करते हैं, देरसे आते हैं, रातको खाना पड़ता है, अरे भाई

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह तो एक खोटे विचार वाली बात है कि खाना पड़ता है। आखिर एक बार तो दिनमें भोजन मिल ही जाता है, क्या एक बारसे प्राण न टिकेंगे? न मिला अनेक बार भोजन तो क्या हर्ज? आखिर कितनी ही सेवा करलो इस शरीरकी फिर भी अन्तमें क्याहोगा? सो तो विचारो। जिस देहकी इतनी सेवा करते वह जीर्ण शीर्ण होगा, नष्ट होगा, या तो मरणके बाद इसे जला दिया जायगा या फिर किसी नदीमें बहा दिया जायगा, कौवे चोंट जायेंगे। क्यों इस देह पर इतनी प्रीतिकी जा रही है? जिस प्रीतिके कारण छोटे छोटे व्रत भी नहीं ग्रहण कर पाते। जरा सा भी कष्ट नहीं सह पाते। अरे उन व्रतोंमें कष्ट भी कुछ नहीं है बल्कि व्रतोंमें आनन्द रहता है क्योंकि अनेक बाह्य पदार्थोंका त्याग होनेसे उपयोग अपने आत्माकी ओर आता है और एक अलौकिक आनन्द जगता है। तो जो देह मिटने वाला है उससे तो काम निकाललें आत्माका। व्रत तपमें इसे जुटायें यह तो है बुद्धिमानी और विषयोंके प्रेममें आकर इस देहको आराममें रखना। मौजमें रखना यह है अविवेक।

शक्ति न छिपाकर व्रतादि धारण करनेका अनुरोध—भैया, कर्तव्य यह है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करें और अपनी वर्तमान स्थितिको न छिपाकर व्रत संयममें प्रवेश करें। एक शब्द आता है शक्तिके अनुसार त्याग करना। पर लोग इससे उल्टा अर्थ लगाते, शक्तिके अनुसार त्याग करना याने शक्ति नहीं है तो त्याग ही न करना अर्थात् शक्तिसे कम त्याग करना, अधिक न करना, शक्तिसे बाहर न करना। यह तो शक्ति अनुसार त्याग बताया है। अब पूछो तो सही अपनेसे कि क्या शक्ति आपमें है या नहीं जरा-जरासी बातोंका त्याग करनेका? शक्ति है तभी तो कोई झंझट सामने खड़ा हो जाय तो कहो दो तीन दिन भी भूखे रहलें। या कोई बड़ा बोझा उठाना पड़ जाय तो उसे भी उठा लें। वैसे बड़ी सुकुमालता बगारते हैं। तो शक्ति तो है पर जरा-जरासे व्रत तप करनेकी शक्ति नहीं है तो यह सोचिये कि आखिर इस मरमिटे देहका जो कि किसी कार्यमें न आयगा उस देहकी प्रीतिके पीछे आत्माको उत्साहहीन रखना यह कोई विवेक नहीं है। जैन शासन पानेके मायने तो है उसका अनुयायी बनना और शक्ति न छिपाकर कार्य करना। त्यागमें तपश्चरणमें ज्ञानमें यह कार्य करना उचित है सो क्या करना चाहिए। उसके लिए आचार्य महाराजने बड़े क्रमसे सारी बातें बताया है। पहली दूसरी तीसरी आदि प्रतिमावोंका आचरण करना, अपनी शक्ति अनुसार आगे बढ़ते जाना। इस ढंगसे वर्णन है।

देवभक्ति, सत्संग, व्यसन-त्याग आदि प्रक्रियावोंकी प्रारम्भसे ही आवश्यकता—जो लोग यह सोच बैठते हैं कि आजकल जमाना और किस्मका है, व्रत तप करनेका जमाना नहीं है तो उनकी यह बात गलत है। धर्मसाधनाका कैसे जमाना नहीं है? क्या इसका जमाना है कि मद्य, मांस, मधु वगैरह अभक्ष्य पदार्थोंका सेवन किया जाय? अरे जमाना इसमें आपका क्या कर रहा है। अपना पक्का चित्त बनायें। रात्रि भोजन न करें। जल छानकर पियें, प्रतिदिन मंदिर आयें, ऐसा कार्य करनेमें तो कुछ कष्ट ही नहीं इसमें कोई जमानेकी रोक नहीं। पर छोटी छोटी बातोंके लिए आलस्य होना, प्रमाद होना यह तो खेदकी बात है। कोई एक जमाना था जबकि बिना देवदर्शन किए कोई एक भी दिन न रहता था। और यह बात देखना हो तो बुन्देलखण्डके देहातोंमें आज भी देख सकते हैं। करीब करीब वही प्रथा आज भी देखनेको मिलती है। पहले तो ऐसा होता था कि यदि किसी दिन प्रभुके दर्शन न कर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सके तो उसका बड़ा खेद मानते थे, पर आज ऐसा हो गया कि उसकी ओर लोगोंका विशेष ध्यान नहीं है। मंदिर आकर देवदर्शन करनेसे लाभ कितने हैं सो तो विचारो। जो बालक रोज मंदिर आते हैं, कुछ धर्मध्यान करते हैं उनके आचार विचार पर भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। उद्दण्ड नहीं हो पाते, विनयशील रहते, गुरुजनोंका समागम भी मिलता रहता है। जो घर व्यसनोंसे बचा रहता वह स्वर्ग समान बन जाता क्योंकि जहां शान्तिका वातावरण हो, जहां एक दूसरेके प्रति विनयका व्यवहारहो वह घर उत्तम है। और जो लोग मंदिर नहीं आते ८—१० बजे दिन तक घरमें पड़े रहते हैं अथवा सोते रहते हैं उनमें स्वच्छन्दता बढ़ जानेसे उनके सभी कार्योंमें बाधा आती है। मंदिरका आना लौकिक कामोंके लिए भी ताजा बना देता है और परमार्थ कामके लिए भी तैयार बना देता है।

रत्नत्रयधर्मकी आराधनाका कर्तव्य—भैया, ऐसा दुर्लभ मानवजीवन पाया तो कर्तव्य क्या है इस बात पर बहुत ध्यान देना और कर्तव्यका पालन करना। कर्तव्य यह है कि सम्यग्दर्शन प्राप्त करें और अपनी शक्ति अनुसार चारित्रमें लगें। जीवनकी कई छोटी छोटी बातें जिनमें न आजीविकाका सहयोग है, न धर्मका सहयोग है, बल्कि आजीविकामें भी फर्क आये और धर्ममें भी फर्क आये ऐसे कितने ही फालतू काम करनेके लिए लोगोंकी उमंग होती हैं, और उनमें उनको कषाय जगती हैं, ये बातें सब उसे धर्मसे दूर रखती हैं। जितना बने उतना दूसरोंके उपकारके काम आये, यदि काम न आयें तो सब जीवोंके सुखी होनेकी भावना रखें। स्वप्नमें भी किसी जीवके विरुद्ध चित्तमें बात न आये। कषाय या विरोध रखनेसे आखिर नुकसान किसका है? खुदका। क्योंकि इस जीवके साथ कार्माण वर्गणायें विस्रसोपचयके रूपमें पड़ी रहती हैं। जो कर्म बंधे हुए पड़े हैं वे तो बंधे हुए हैं ही पर उनसे अनन्तगुनी कार्माण वर्गणायें विस्रसोपचयके रूपमें पड़ी रहती हैं। जो कर्म बंधे हुए पड़े हैं वे तो बंधे हुए हैं ही पर उनसे अनन्तगुनी कार्माण वर्गणाके विस्रसोपचय उम्मीदवार कर्म पड़े हुए हैं। तो जहां जीवने जैसा कषाय किया, जैसा भाव किया उसही समयवे कर्मरूप बंध रहे। थोड़ीसी गल्तीमें, थोड़ीसी स्वच्छंदतामें कर्म बंध तो गए मगर उनके उदयकालमें कितना कष्ट भोगना पड़ेगा। वह बड़ी असह्य बात होगी। इससे यह जानकर कि मेरे जीवके साथ विस्रसोपचयकी कार्माणवर्गणायें लगी हैं। जहां ही मेरेसे गलती हुई, विषय कषायके भाव रहे कि वे कर्मरूप बंध जायेंगे, फिर मुश्किल पड़ेगी। तो इस नरजीवनमें करने योग्य काम है अभक्ष्यसे दूर रहना, किसीका बुरा न विचारना, गुणियोंके गुणोंमें प्रेम और हर्षभाव बढ़ाना। जो अच्छे काम करेंगे तो भविष्य अच्छा रहेगा। जिनकी आज परिस्थिति खराब है उनका वह पूर्वजन्मके पापका फल है कितने ही दरिद्र हैं। कितने ही अनेक कारणोंसे कष्टमें पड़े हैं जिनको देखकर दया उत्पन्न होती वह किसका फल है? धर्मभावमें न रहे, अधर्ममें रहे, विषयकषायोंकी उमंगमें रहे, दूसरोंका दिल दुःखाया, धर्मकायोंमें विघ्न डाला, मुनियों पर उपद्रव किया। अनेक कार्य ऐसे खोटे बने जिनका फल है कि आज यह जीव दुर्दशामें पड़ा हुआ है। जीवनमें यह ही कर्तव्य है कि हम अपने सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, सम्यग्ज्ञानको सम्हालें।

अपने भविष्यकी अपने आपपर जिम्मेदारी होनेसे सद्भावनाका प्रभाव—जिस बातको हम प्रभुके सामने कह सकते जनताके सामने कह सकते वह बात भली हुआ करती है और बुरी बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

न भगवानसे कह सकते और न जनताके बीच कह सकते। तो जो बात कहनेमें एक शोभा होती है या कुछ आनन्द जगता है उस कामके करनेमें जो आनन्द होता उसका क्या कहना? अब इस सभाके बीच किसीको व्याख्यान देनेके लिए खड़ा कर दिया जाय तो क्या वह यह कह सकेगा कि जितना दूसरोंकी बुराई करते बने उतना करना चाहिए। उसमें मौज आता है ऐसा तो कोई नहीं कह सकता। तो इससे समझना चाहिए कि जो बात नहीं कही जा सकती वह अत्यन्त बुरी है और अपने कष्टके लिए है। एक यह निर्णय बनावो कि जो बुरा करेगा, जो दूसरोंसे ईर्ष्या करेगा, उनके कार्योंमें विघ्न डालेगा, सतायेगा, उसका फल कौन भोगने आयगा? जो अन्यायसे धन कमायगा, जो दूसरोंका दिल दुःखायगा उसका फल दूसरा कौन भोगने आयगा? कोई दूसरा न भोगने आयगा, जो आपके बड़े हितैषी हैं, घरके ही लोग हैं, जिनपर आपको बड़ा विश्वास है। लड़के, स्त्री, भाई, मित्रजन कोई भी पापके बंधते समय या कर्मोंके फैलावमें हिस्सा लेने वाले नहीं हैं, हो ही नहीं सकते। वस्तुका स्वरूप ही नहीं ऐसा कि आपकी परिणतिको कोई दूसरा भोग सके जब ऐसा एक स्पष्ट न्याय है तो क्यों अपनेको विपत्तियोंके कुवेंमें ढकेला जाय?

देवभक्ति, स्वाध्याय और सत्संगके बिना उन्नतिकी अपात्रता—भैया, अच्छे बनना, ज्ञान पाना, कषाय मिटाना, प्रभु भक्तिसे यह ही तो फायदा है। भगवानकी भक्ति करें गुणस्मरण करें, दर्शन करें और अपने आपके विचारमें आचरणमें जो चले आये हैं शुरुसे, वासनासे उनमें अन्तर न डालें तो यह क्या कहा जाय? या यों कहो कि हम प्रभुको बहकाते हैं जो रोज-रोज प्रभुके सम्मुख आकर कहते हैं कि आतमके अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय। और घर जाकर कहीं जाकर मंदिरसे निकलकर वही कषाय, वही आसक्ति, वही विरोध, वही दुर्भावना रहती है तो क्या फल पाया उसने? धर्म समागम पानेका लाभ क्या पाया? कहते तो हैं कि मुझे मोक्ष चाहिए, पर ये मोक्षका रास्ता पानेके लक्षण हैं क्या? जैसे बहुत प्रारम्भमें विषयकषायके भाव थे वैसे ही ३०—४० वर्षके बाद भी धर्मका नाम लेकर भी वहीका वही रहे तो इसपर कुछ अपनेपर तरस आना चाहिए। क्यों नहीं उन्नति हुई? उसके मूल दो कारण हैं? एक तो विधिसे स्वाध्याय नहीं हुआ और दूसरे सत्संग नहीं मिला। ये दो अभाव मनुष्यके ज्योंके त्यों पतनकी स्थितिमें बने रहनेके कारण हैं। भले ही स्वाध्यायका नाम लेकर स्वाध्याय किया, पर स्वाध्यायकी विधि यह है कि जो भी दो चार लाइनें पढ़ें उनका जो अर्थ है उसे अपने आपपर घटित करें। सभी विषय अपने आपपर घटित किए जा सकते। यदि अपने आपपर घटित करते हुए स्वाध्याय किया गया होता तो अवश्य ही हमारे बर्तावमें अन्तर आ जाता। दूसरी बात—सत्संग नहीं किया। जो पुरुष विरक्त हुए, आत्माकी धुन वाले हुए, कल्याणके अभिलाषी हुए, जैन शासनके अनुसार प्रवृत्ति रखने वाले हुए उनका संग अधिक करना।

विनय व गुणानुरागसे धर्मलाभकी पात्रता—भैया! सत्संग व धर्मजागरण बनता है भक्ति अनुराग और सेवाकी बुद्धिमें। कहीं जैसे अन्य जगह जबरदस्तीसे काम बना लेते, जैसे गाय दूध नहीं देती तो उसके दोनों पैर रस्सी से बांध देते, एक आदमी डंडा लेकर खड़ा हो जाता और एक आदमी दूध निकालने लगता तो गाय डरके मारे दूध दे देती, बादमें उसके पैरोंकी रस्सी खोल देते और ऊपरसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

एक डंडा भी गायके मारते, तो जैसे जबरदस्तीसे वहां दूध निकाल लेते इस तरहकी जबरदस्ती यहां न चलेगी। धर्मकी बात पानेके लिए बड़ी भक्ति चाहिए, विनय चाहिए, कृतज्ञता चाहिए। इन गुणोंसे अगर हृदयपात्र बने तो वहां धर्मकी बात निकल पायेगी, कहीं किसी जगहसे भगवानकी पूजासे धर्म निकलता होता तब तो खूब भगवानकी पूजा करते और वहांसे धर्म निकालते, लेकिन जबरदस्ती यों धर्म नहीं मिलता। यदि प्रतीति है, गुणानुराग है, प्रभुके गुणोंका स्मरण करके और प्रभुके लिए, मंदिरके लिए, प्रभुकी भक्तिके लिए, प्रभुकी वाणीके लिए, प्रभुके उपदेश प्रचारके लिए आपका सर्वस्व भी लग रहा, यदि इतनी हिम्मत है इतनी तैयारी है तो वह प्रभुके गुणस्मरण रूप सत्संगसे, धर्म पाल लेता है। धर्मका मिलना किसी स्थानसे जबरदस्ती नहीं होता किन्तु अपने आपकी तैयारीसे होता है। तो एक ही कुञ्जी यह जानकर कि जैसा मैं करूँगा वैसा ही भरूंगा, मेरा मैं ही जिम्मेदार हूं। हमेशा अच्छे कार्य करें, बुरे कार्य न करें। अच्छेके लिए हां-हां और बुरेके लिए ना ना, ऐसा एक दृढ़ संकल्प बने तो हम अपने इस दुर्लभ मानवजीवनको सफल कर सकते हैं।

श्रावकका व्रतपालन सहित जीवनयापन पूर्वक अन्तमें समाधिमरणके कर्तव्यका निर्णय—इस भव्य श्रावकने अपने जीवनमें सार तत्त्वमात्र अपने चैतन्यस्वरूपमें अपने आपका अनुभव करना माना है एक सहज चित्स्वरूपके अनुभवके सिवाय शेष समस्त कार्य मेरे लिए प्रयोजनवान नहीं हैं, यह जिसके चित्तमें भली भांति निर्णीत है ऐसे इस श्रावकने अपने जीवनको व्रती रूपमें बिताया और अन्त समयमें इसका निर्णय है कि मैंने जीवनमें सदाचार पाला, व्रत धारण किया। आत्मतत्त्वकी भावनाकी, यदि अन्त समयमें परिणाम विचलित हुए तो मेरा किया कराया यह सब व्यर्थ रहेगा। यद्यपि पूरा व्यर्थ नहीं रहता फिर भी आगे धर्मपरम्परा, मोक्षमार्ग परम्परा तो न बनेगी इस कारण श्रावकके मनमें यह दृढ़ निर्णय है कि अन्त समयमें मैं समाधिभाव ही रखूँगा, जिसे कहते हैं समाधिमरण। देखिये—दोनों बातें आवश्यक हैं, कोई सोचे कि मरण समयमें समता परिणाम रख लूँगा, जीवनमें क्यों व्रतादिका कुछ कष्ट करूं, तो ऐसा जिसके प्रमाद अभीसे हैं उससे ऐसा नहीं हो सकता कि मरण समयमें अपने परिणाम अच्छे रख सकेंगे। जैसे कितने ही लोग ऐसा विचार करते हुए पाये जाते हैं कि उम्र तो अभी बहुत है, धर्म पालन तो वृद्धावस्थामें किया जायगा। अभी जवानी है तो अनेक प्रकारके आराम, सुख, ये सब भोगने चाहिए, और धर्मपालनतो वृद्धावस्थामें कर लिया जायगा, ऐसा जिसके अभीसे प्रमाद है वह न जीवनमें कर पाता है न वृद्धावस्थामें करता है। तो ऐसे ही कोई सोचे कि मरते समय अच्छे भाव रहेंगे तो आगेकी गति भली होगी, सो मरते समय परिणाम ठीक कर लिए जायेंगे, ऐसा जिसका अभीसे भाव है कि पहलेसे क्यों व्रतादिक धारण करना? भले प्रकार धर्मध्यान करना यह तो उसी समय कर लिया जायगा वह नहीं कर पाता।

आवीचिमरणके निरन्तर अवसरोंपर निरन्तर समता समाधिभावका कर्तव्य—देखिये मरणदो प्रकारका होता है—एक आवीचिका मरण और एक तद्भव मरण। तद्भव मरण तो अन्तमें मर गए, शरीरसे अलग हो गए उसका नाम है तद्भव मरण। और आवीचि मरण इनके प्रतिसेकेण्ड चल रहा है, प्रति समय चल रहा है। जैसे कहा करते हैं ना कि जो आयु गई वह वापिस नहीं आती, तो ऐसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही समझिये कि आयुकर्मके जितने परमाणु बांधे थे निषेक वर्गणायें, सो जिनका उदय आता है वे निकल गए, समय निकल गया, उस समयकी आयुका मरण तो हो गया, प्रति समय हम मर रहे हैं। आवीचि मरणकी दृष्टिसे प्रति समय हमारी आयु जा रही है। तो कर्तव्य यह है कि हम प्रति समय समाधिका भाव रखें। समाधिमरणमें मुख्य काम रागद्वेष न करनेका है और आत्माके सहजस्वरूपकी दृष्टि रखनेका है। चूँकि बुढ़ापेमें या कठिन रोगमें जहां कि यह निश्चित सा है कि मरणकाल आ गया है उस कालमें फिर आहार वगैरह की वाञ्छा या इनका आरम्भ या इनमें दिल लगाना यह बाधक है समाधिका, इस कारण इनका त्याग किया जाता है, और समाधि मरणमें आहार पानीका त्याग करा देना इसकी मुख्यता नहीं हैं। ये सहायक हैं, मुख्यता है परिणामोंकी निर्मलताकी। तो चूंकि आवीचि मरणमें हमारा पूरा मरण नहीं हो रहा, इस भवसे हम नहीं जा रहे, इस कारण आहार आदिकके त्यागकी तो आवश्यकता नहीं है इस रोजके मरणमें, प्रति समयके मरणमें, लेकिन विषयोंमें आसक्ति न रहे, गुजारेके लिए ही इनका उपयोग है, ऐसी दृष्टि रहे और रागद्वेष मोहभाव न लायें। रागद्वेष तो आयगा जब जीवन है और घर है, पर मोह रंच न आये और रागद्वेषमें हीनता रहे, ऐसा प्रयास करें तो आवीचिमरणके लिए समाधि ही समझियेगा।

सत्संग धर्माचरण द्वारा जीवनको शान्ति सुवासित रखनेका कर्तव्य—इस लोकमें जो मनुष्य मनुष्य है ये अन्य जीवोंकी भांति प्रकृत्या विषयकषायके वश हैं और फिर मिले विषयकषाय वाले पुरुषोंका संग तो इसके विषय कषायोंमें वृद्धि बनती है। और यह असत्संग जीवनको बरबाद कर देता है। अच्छा यही है कि जिस प्रकार मेरे विषयोंका अनुराग कम हो, कषायभाव कम हो और ऐसे ही संतजनोंका, सत्पुरुषोंका सत्संग रहे अधिक जो विषयकषायोंको पसंद नहीं करते, धर्मके मार्गमें चलनेके इच्छुक हैं तो उनके विषय और कषाय दोनों पर विजय बन सकती है। धर्मगोष्ठीके मायने और है क्या? अपने ही नगरमें, अपने ही मोहल्लेमें हर जगह दो चार श्रावक ज्ञानी आत्मकल्याणी रहते ही हैं। अपनी कषाय मंद करके धर्मात्माजनोंकी गोष्ठी रखना, अर्थात् मिलकर धर्मचर्चा करें। आत्मकल्याण बने उस प्रकारकी प्रेरणा बने तो यह एक अलौकिक काम है। पहले समयमें तो रोजगारकी सीमा रखते थे विवेकी पुरुष। जिसके अनेक दृष्टान्त आये हैं। एक सीमा रख लेते थे कि इतने की बिक्री हो जानेपर दुकान बंद कर देना और मंदिरमें पहुंचकर धर्मचर्चा करना। अब तो किसीका यह उद्देश्य ही न रहा कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है, और अधिक समय तत्त्ववार्तामें जाय, पुराण पुरुषोंकी कथामें जाय, ऐसा जीवन व्यतीत हो तो उससे लाभ है। और गप्पसप्पमें समय जाना, यहां वहांकी बुराइयोंमें समय जाना, यह तो अपने लिए एक घातक कदम है। जीवनमें यह ध्यान रहे कि मेरे उपयोगमें किसीके दोषका आकार न आवे, आवे तो गुणोंका आकार आवे। दूसरेके गुणोंकी चर्चासे, गुणोंके ध्यानसे गुणोंका आकार आयगा, दूसरेके दोषकी चर्चा, दोषका ध्यान रखें तो दोषोंका आकार आयगा। भला श्रावक यह चाहता है कि मेरी उपयोगभूमिमें दोषोंका आकारही न बने। तो आवीचिमरणके समय यह श्रावक अपने आपको सदैव समाधानरूप रखता है।

निष्प्रतीकार उपसर्गके आनेपर सल्लेखनाकी अङ्गीकारता—जिसने अपना जीवन सहज

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

परमात्मतत्त्वकी बड़ी दृढ़ भावनामें व्यतीत किया वह श्रावक अब कठित परिस्थितियोंमें जिनमें कि मरण सम्भव है इसकी तैयारी कर रहा कि मेरे परिणामोंमें अब रागद्वेषका प्रसंग रंच मत आवो। वे कौन-कौन सी स्थितियां हैं जिन स्थितियोंमें समाधिमरण किया जाता है। जिनका कोई उपाय नहीं है दूर करनेका ऐसे उपसर्ग आ जाय तो समाधिमरण बताया है। ऐसी परिस्थितियां यहां कही जायेंगी उन सबमें निष्प्रतीकार यह विशेषण लगेगा, अर्थात् जिसका कोई प्रतीकार न हो सके, उपाय न चल सके, ऐसी कठिन परिस्थितियां आयें तो समाधिमरण स्वीकार करना चाहिए, जिनमें पहली बात कही जा रही है कि कठिन उपसर्ग कोई आये, जिसका कोई उपाय ही नहीं है, जैसे जंगलमें किसी शेरने आक्रमण कर दिया, मुखसे खाया, पंजोंसे नोचा, विदारण कर दिया उस जगहमें क्या प्रतीकार। किसी शिकारीने बाण मार दिया तो अनेक उपद्रव होते ही हैं, निष्प्रतीकार है वह उपसर्ग। जो उपसर्ग कठिन है, जिसका दूर होना सम्भव नहीं तो ऐसे उपसर्गके समय समाधिमरण करना चाहिए। श्रावक पर भी कठिन उपसर्ग सम्भव है। तो पहली परिस्थिति है यह कि निष्प्रतीकार उपसर्ग आया है, सर्वका परित्याग करके, शरीरकी भी सुध छोड़कर एकमात्र चित्स्वरूपकी दृष्टि रहे। कितना पवित्र कार्य है यह कि जो इस शरीरसे विदा हो रहा हो वह अपने इस पवित्र सहज ज्ञानानन्दस्वरूप अंतस्तत्त्वको दृष्टिमें ले। उस ही का अनुभव करें कि मैं यह हूं और इस प्रकारसे शरीरसे विदा हो रहा है तो वह आदर सहित पूज्य है पवित्र है, यह कार्य चाहिए, पर मरणसमयमें ऐसा परिणाम रह सके उसके लिए जीवनभर तैयारी चाहिए।

अपनेमें असद्भाव न होनेदेनेकी चेतावनी—भैया, जीवन क्यों बुरा बिताया जाय? जो मिला है वह सब विनाशीक है। यह शरीर भी विनाशीक है, और यदि दूसरेका अपकार किया जाय, बुराईकी जाय, कष्ट पहुंचाया जाय तो ऐसे तनके पानेको धिक्कार है। उसका परिणाम है कि आगे भी जन्ममरण चलेंगे और खोटा शरीर मिलेगा। सड़कोंपर जब देखते हैं जैसे कि आज ही सुबह मैंने देखा कि नीचे दो बालक दो गधोंको लिए जा रहे थे, वे एक जगह कूड़े पर बैठ गए, गधे तो उस कूड़ेमें अपना मुख देकर कुछ खा रहे थे और वे दोनों बालक कूड़ेको छितर बितर करके कुछ खोज रहे थे, ऐसी जिन्दगी मिलती है खोटे भाव वाले पुरुषोंको। आज कुछ अच्छी मनुष्यपर्यायमें हैं, कहीं मानलो ऐसी दुर्दशामें पहुंचे तो यह कार्य करना पड़ता है। गधे ही बन गए तो कूड़ेमें गंदगीमें, खराब चीजमें मुख देते रहना पड़ेगा। कोई यह ठेका तो नहीं है कि जो आज मनुष्य है वह मनुष्यही रहेगा या मनुष्यसे बढ़कर ही चलेगा। जैसे कारनामे होंगे वैसा आगे फल भोगना होगा। तो जगतके जीवोंको देखकर कुछ अपने आप पर तरस तो करना चाहिए कि मुझे ऐसा ही बने रहना पंसद है या संसारके सारे झंझटोंसे निवृत्त होना सही है? संसारके जीवोंमें किसी भी जीवके प्रति अपने चित्तमें बुराईका अंश न आये, अहित का अंश मत आये। किसीके द्वारा मेरेको कष्ट भी पहुंचे तो भी उसके एवजमें इस जीवको यों कष्ट पहुंच जाय ऐसा भाव कभी न आना चाहिए। कोई कष्ट आया है तो ज्ञानबलसे कष्टको कुछ दूर कर लीजिए। सोचिये अपने ही असाताका उदय है जिससे कि अन्य लोग बाह्य कारण बन रहे हैं। इसमें अपराध मेरा है, दूसरेका अपराध नहीं है। वह अपराध आजका तो नहीं है मगर पूर्व कर्म ऐसे ही बांधे थे जिस बद्ध कर्मके उदयमें आज दुःखका सामना करना पड़ रहा है, ऐसा सोचकर दूसरेपर क्षमाभाव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही रखना। वह बात कठिन नहीं है। हां जिसके क्रोधकी प्रकृति है उसको लगेगा कि यहां गप्प मारी जा रही है, पर यह गप्पकी बात नहीं है, यह की जा सकने वाली बात है। ज्ञानप्रकाशमें यह सब बात सम्भव होती है।

निष्प्रतीकार उपसर्ग आनेपर धर्माराधनापूर्वक सल्लेखनाका धारण—जिसने अपना जीवन सद्भावोंमें व्यतीत किया वह पुरुष तो यहां भी आदर्श है, पूज्य है, पवित्र है और स्वयंके लिए तो वह कल्याणरूप है, ऐसा ही पुरुष मरण समयमें अपने भावोंकी सम्हाल रखपाता है। कोई पूर्व जन्मका बैरी हो, मनुष्य हो, पिशाच हो, कोई उपसर्ग करे। भील म्लेच्छ सिंह आदिक आक्रमण करे या जलमें गिर गया, बनमें आग लग गई, ऐसे कितने ही कठिन उपसर्ग होते हैं, वहां क्या करना? समाधिभाव, रागद्वेषका परिहार, अपने चित्प्रकाशकी दृष्टि। देखिये जिसने जो मिठाई खायी है उस मिठाईका नाम सुनते ही उसके गलेमें मिठास उतरने लगती है। उसके घूँटमें ही मीठापन आ जाता है, क्योंकि अनुभव है उसको ऐसा ही जिसने जीवनमें आत्माके इस चैतन्यस्वरूपका अनुभव किया है। एक किसी भी समय उसका नाम सुनते ही सच्ची बात सामने आ जाती है। अब सोचिये कि हमें अपने जीवनमें क्या करना? एक ध्येय बनाइये कि जितने बार अधिक स्वानुभव मुझे प्राप्त होगा मुझे वह कार्य करना। मित्रजन, कुटुम्बीजन अनेक लोग जिनमें बैठकर समय गुजारते, वार्ता करते ये सब कोई भी मेरे आत्माके जिम्मेदार हैं क्या? ये मेरे सहयोगी हैं क्या? आत्मकल्याण कर देंगे क्या? तो उत्तर आयगा—निल। किसी दूसरेसे मेरा कुछ नहीं हो सकता। तब समय अन्य बातोंमें न गुजर जाय और धुन रहे यह कि मेरेको ऐसा अवसर अधिक प्राप्त हो जिसमें मैं स्वानुभव कर सकूं। ऐसी जिनकी वाञ्छा है उनको कभी कुटुम्बमें, मित्रोंमें बोलना पड़ेगा तो ऐसी वाणी उनकी निकलेगी कि जिससे दूसरोंका भी उपकार हो। यदि कोई कठिन उपसर्ग आ जाय तो उस समय यह जानकर कि यदि इस शरीरको देखूँगा, इसका लगाव रखूँगा तो मेरे रत्नत्रय धर्मकी हानि होगी। तो जब यह शरीर छूटनेको ही है और साथ ही इस धर्मके रत्नत्रयकी हानि हो तो उसमें तो उसका सब गया। धर्मको न नष्ट करेगा। उस धर्ममें और अधिक प्रीति करेगा।

निष्प्रतीकार उपसर्गादि आनेपर सल्लेखनाधारणका प्रयोजन धर्ममय अपनेको अनुभवना—जब कभी कठिन दुर्भिक्ष आ जाय, दाने दानेका मुहताज होना पड़े, जिसमें जीवन सम्भव न रहे वहां ही समाधिमरण स्वीकार करना चाहिए। कहीं किसी जंगलमें ही फंस गए जिसका ओर छोर नहीं विदितहो रहा, जहां अनेक हिंसक पशु रहते हैं, खूब चलनेपर भी फंसाव ही फंसाव अधिक बढ़ता जाय, कहां जायें, क्या करें? जंगलसे निकलना दुश्वार हो गया, तो ऐसी स्थितिमें भी समाधिभाव रखना, खाना पीना तो वैसे ही नहीं मिलता है, जंगलमें फंस गए हैं तो उस स्थितिमें यह करे क्या? अपने रत्नत्रय धर्मकी रक्षा करें, यह ही हुआ एक समाधिमरण। जब निष्प्रतीकार बुढ़ापा आ जाय, जैसे वृद्धावस्थामें इन्द्रियां जीर्णशीर्ण हो गईं, उठा बैठा भी नहीं जा सकता अन्न-पानी भी नहीं चल सकता, कठिन व्याधि जरा भी हुई तो वहां यह ही समाधिमरण स्वीकार करें अर्थात् रागद्वेष परिणाम तजकर अपने सहज परमात्मस्वरूपकी दृष्टिका ही प्रोग्राम रखें और ऐसी सद्भावनाकी जब दृष्टि चलती है तो अन्य आहार आदिकका भी त्याग होता है। समाधिमरण शब्द सुनते ही मुख्यता लाना चाहिए कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शरीरसे भी ममता लगावका त्याग कर दें। जो लोग समाधिमरणके लायक परिस्थितिमें न हो और समाधिमरणकी ठान लें तो वे तो जिन आज्ञासे बाहर काम कर रहे, जैन शासनके अन्तर्गत नहीं हैं। क्या प्रयोजन है? जब शरीर चल रहा है और धर्मध्यान चल रहा है फिर भी समाधिमरण कर रहे इसका कारण क्या है? असमयमें जबरदस्ती मरण, इसका फल है कि असंयमी जीवन मिलेगा आगे। मानलो देव भी हो गए तो कौन सा लाभ वहां लूट लिया? मनुष्योंसे भी अधिक लोभ है देवोंमें। लोभ कहीं वस्तुके रखनेका ही नाम नहीं है, किन्तु बाह्य पदार्थोंकी तृष्णा हो उसे लोभ कहेंगे। देवगतिमें लोभकषाय अधिक बताया है। यद्यपि वहां रोजगार करना पड़ता नहीं, अन्न जमा करना नहीं पड़ता। बड़ा आराम है मगर दूसरेके ऋद्धि वैभवको देखकर झुरना, हाय मेरे न हुआ ऐसा, वे इसी भावमें मरे जा रहे हैं।

संयमपात्र मनुष्यभवकी संयमसे ही सार्थकता—मनुष्यभव है, संयमसे रह सकते हैं, ऐसे उत्तम भवमें बिना ही कारण समाधिमरणकी ठान लेना, इसका मूल आशय बढ़िया नहीं है। हां जो कारण बताये गए हैं समाधिके वे कारण जुटनेपर समाधिमरण किया जाना चाहिए। कोई रोग ऐसा आ जाय जिसके मिटनेका कोई उपाय न रहे तो अपनी धर्मरक्षाके लिए समाधिमरण करना। तो इस श्रावकने इस शरीरको सेवक जानकर इसको भोजन पानका वेतन दिया। सो जब तक यह शरीर हमारी धर्मसाधनामें सहयोगके लायक रहे तब तक तो इसको खानपान दें, जब धर्मके लिए उससे सह्योग न मिले बल्कि अधर्मके लिए प्रेरणा जग रही है ऐसी कठिन व्याधि आ जाय, कठिन मरणावसर जैसी दशा आ जाय तो वहां एक ही निर्णय रखना है कि इस शरीरका भी लगाव छोड़ें, जो शरीर एक दिन यों ही जला दिया जायगा उससे क्या लगाव रखना। जिसने इस दृष्यमान समस्त जगतको असार बेकार जाना है उसमें ही यह हिम्मत बन सकती है कि वह सर्वका राग छोड़कर अपने इस सहजस्वरूपकी आराधना करे।

सल्लेखनाका प्रयोजन कषायोंको कृश करना—सल्लेखनाका अर्थ है भले प्रकार कृश करना। सत् मायने अच्छी प्रकारसे लेखना मायने कृश करना, लिखबिलेखने धातुका अर्थ क्षीण करना है। किसको क्षीण करना? कषायोंको। जब मरण समय आ जाये तो उस समय कषायोंको दूर करना और आत्मदृष्टि सहित शरीरसे प्रयाण करना इसका नाम है सल्लेखना। इस सल्लेखनाको तब किया जाता है जब उपायरहित उपसर्ग आये, दुर्भिक्ष आये, बुढ़ापा आये, इसी प्रकार जब कभी ऐसा रोग आये कि जिसका कोई उपाय न बने तब समाधिमरण अर्थात् सल्लेखना धारण करे। जैसे किसी प्रकारका कठिन ज्वर अतिचार श्वांस, कफ आदिक बढ़ जाय और फिर वह जैसे कि टीबीका एक अन्तिम तृतीय रूप आ जाय अथवा कैन्सर आदिककी प्रबलता आ जाय जहां मरण समय है ऐसा जाने तब सल्लेखना धारण करना चाहिए। सल्लेखनाके सम्बंधमें दो बातें हैं। कषायोंको दूर करना अथवा आहारको घटाना, और घटाते-घटाते जल पर आ गए, फिर कभी जल भी छोड़ दिया। तो कषाय दूर करना यह तो हमेशा का कर्तव्य है, उस समयमें विशेष विचार करनेकी जरूरत नहीं रहती। न भी सल्लेखना करे तो भी कर्तव्य है कि वे कषायें दूर रखें, पर मरण समयमें तो कषायोंको विशेषतया दूर रखना, समता परिणाम लाना यह कर्तव्य है। इसमें विशेष विचार यों न करें कि ये तो जिन्दगीमें भी करते थे। मरण समयमें विशेष कर लिया। पर आहार आदिकका जो त्याग है इस पर विचार करनेकी आवश्यकता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सल्लेखनामें शारीरिक परिस्थिति निरखकर ही आहारादिके त्यागका औचित्य—शरीर यदि ठीक है और कुछ भावुकतामें आकर या कुछ लोगोंके द्वारा उकसाया जानेपर आहार जलका त्याग कर दिया तो उसमें उसका खुदका अकल्याण है। संक्लेश होगा, भीतरसे सद्भाव मिटेगा, तो उसमें लाभ कुछ नहीं हुआ, बल्कि हानि हुई, क्योंकि ऐसे भावोंसे मरण करके मानलो कदाचित जीवनके व्रत तपका कुछ प्रभाव रहे तो देव बन जायेंगे। वहां भी असंयमी जीवन रहेगा और विशेष संक्लेश हो गया तो दुर्गति प्राप्त होगी, इस कारण आहार आदिक त्याग वाला जो विभाग है उसमें विचार करनेकी जरुरत होती है। हमारे गुरुजी तीन वर्ष पहलेसे मुझसे कहने लगे थे कि जब मेरा मरणकाल आये तो तू जरूर हाजिर रहना। तो हमने कहा महाराज यह भी कोई कहनेकी बात है। यह तो हमारा काम है और सौभाग्य है कि सेवा करनेको मिले। तो कुछ उनको विश्वास था कि इसकी देखरेखमें जो एक बात बनेगी वह ढंगसे बन जायगी, आखिर हुआ भी ऐसा ही। मरणसे डेढ़ माह पहले ही चातुर्मासके बीचमें ही आदमी भेजकर हमको बुलवा लिया। उस समय हमारा गयामें चातुर्मास चल रहा था। खैर हम गुरुजीके पास ईसरी पहुंचे, वहां गुरुजीकी समाधिमरणके समय हम निगरानीमें रहे। तो कभी ऐसा भी हो जाता कि किसीके विशेष बाधा है तो उस बाधामें अतीव संक्लेश परिणाम करके मरेगा। तो परिस्थिति देखी जाती, पृथक्-पृथक् निर्णय कोई नहीं रहता समाधिमरणमें कि ऐसा ही करें। त्याग एक उत्सर्ग मार्ग तो है पर कुछ बात बिना लिखी भी होती कि ऐसी परिस्थिति हो तो यों करना। वह तो देखरेख करने वाले किसी समर्थ एक निर्णायकके निरीक्षणकी बात है। जिस प्रकार भी हो, लक्ष्य यह है कि हमारे भावोंमें संक्लेश न आये और आत्मस्वरूपकी भक्तिमें रहकर, जिनेन्द्र देवके गुणस्मरणमें रहकर हमारी मृत्यु हो। लक्ष्य उसका एक रहता है, फिर उस बीच कुछ बन जाय तो तत्काल प्रायश्चित भी होते, अनेक सावधानियां तो होती ही हैं। ऐसे समाधिमरणमें बड़ी सावधानी रखी जाती है।

निष्प्रतीकार रोग होनेपर धर्मार्थ सल्लेखनाका कर्तव्य—आहार छोड़ देने वाला काम ऐसे ही समयमें होना चाहिए कि जहां कठिन उपसर्ग आदिक आये, ऐसा रोग आये कि जिसका कोई इलाज सम्भव नहीं। पेट अत्यन्त कड़ा हो गया, शरीर पर सूजन आ गई और तिसपर भी उसके रोगकी वृद्धि होनेको है। ऐसी स्थितिमें धैर्य धारण कर उत्साह पूर्वक सल्लेखना धारण करना चाहिए। उस समय श्रावकजन गृह कुटुम्बसे पूर्ण ममता छोड़ देते हैं। एक घटना है बुन्देलखण्डकी कि एक जैन घरमें एककी स्त्रीके प्रसूति हुई। प्रसूति होते ही उस स्त्रीके कोई मर्ज बन गया और उसकी मरणासन्न दशा बन गई। बच्चा हुए कोई दो दिन ही हो पाये थे। वह एकदम अशुद्ध स्थितिमें थी। तो वहां पति आया और बड़े प्रेमसे उस स्त्रीके पास आकर उसकी गड़बड़ हालत देखकर रोने लगा। तो वहां स्त्री बोली—आप क्यों रो रहे? आपका नुकसान क्या? हमारी तो इधर लाश भी न उठने पायगी कि उधर तुम्हारी शादी सम्बंधकी बात तय हो जायगी। तो वह पुरुष बोला—मैं अब आगे कभी शादी नहीं करूंगा। तो फिर स्त्री बोली—यदि शादी नहीं करोगे तो जो तुम्हारी पहली स्त्रीके ये दो बच्चे हैं उनकी परवरिश कौन करेगा? वे तो लावारिस बन जायेंगे? तो फिर उस पुरुषने कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अब शादी नहीं करूंगा? ··· अच्छा तो यहां हम हैं आप हैं और साक्षी रूपमें भगवान हैं, उन भगवानको अपना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

साक्षी बनाकर प्रतिज्ञा लो कि अब शादी नहीं करूंगा। ··· हां भगवानको साक्षी बनाकर प्रतिज्ञा है कि मेरी अब मैं अपनी शादी नहीं करूंगा। और इस मरण समयमें तुम मेरे लिए आज्ञा करो कि मैं किसको क्या दान दूं? तुम जो कहोगी वह हम दान करनेको तैयार हैं, तो फिर स्त्री बोली—हम जो चाहते हैं क्या आप उसे दे सकेंगे? ··· हां हां अवश्य देंगे, बोलो क्या चाहती हो? ··· मैं यह चाहती हूं कि मेरे पाससे आप दूर हो जावो, अब आप न तो मेरे पास आना और न किसीको आने देना, मैं तो आपसे यह चाहती हूं। अब वचनबद्ध तो था ही सो वह वहांसे चला गया और किसीको उसके पास आने भी न दिया। इधर उस स्त्रीने क्या किया कि एक भींटके सहारे टिक गई, अन्न जल औषधि सबका त्याग करके सल्लेखना ले लिया और समाधिमरण कर गई। अब भला बताओ—यदि कोई कहे कि उस अशुद्ध दशामें तो उसके सूतक पातक चल रहे थे, कैसे उसने सल्लेखना धारण किया? सो ऐसा कहना ठीक नहीं। मानो उस अशुद्ध दशामें वह सल्लेखना धारण न करती और मरण करके कुगतिमें जाती तब तो उसका बड़ा अनर्थ था। इसलिए चाहे कोई शुद्ध स्थितिमें हो या अशुद्ध स्थितिमें हो, आत्मस्मरण करना तो उसका भला ही है। हां अशुद्ध दशामें पूजा, पाठ, अभिषेक, पात्रदान आदि कार्योंकी मनाही है मगर स्वरूपस्मरण करने, त्याग करने आदिकी मनाही किसी भी स्थितिमें नहीं है।

सल्लेखनामें धर्मके संभूतिस्थानका आलम्बन—जिसे कहते हैं धर्म वह धर्म किसी मंदिरमें बैठकर भी न मिलेगा। और कहीं शौच जाते समय वहां भी धर्म मिल जाय। धर्म नाम है आत्माकी वीतराग परिणतिका। मंदिर एक साधन है। यहां आकर प्रभुके गुणस्मरण करें, वीतरागताका आदर करें, और वीतराग होनेकी भावना करें। और अगर कोई उद्दण्ड हो, ऊधमी हो, कषायवान हो और मंदिरमें ही बैठा है तो क्या उसे धर्म मिल जायगा? धर्म है आत्माकी शुद्ध परिणतिका नाम। तो जब यह श्रावक देखता है कि मेरे बड़ा कठिन रोग आया जिसमें कि बचना भी सम्भव नहीं है, तो वह अपने धर्मकी रक्षाके लिए सल्लेखना धारण करता है। देहसे, कुटुम्बसे सबसे ममता तज दी। कुटुम्बीजनोंको चाहिए कि जिसका मरणकाल आया है उसकी सम्हाल बनायें। जीवनभर जिसने स्त्री पुत्रादिक की रक्षाकी, उनका पालन पोषण किया, उनकी सब व्यवस्थाकी उसके सामने मरण समयमें यदि वे ही स्त्री पुत्रादिक आकर रुदन मचायें तो बतावो वे उसके साथ न्याय कर रहे कि अन्याय? अरे एक दृष्टिसे देखो तो अन्याय कर रहे। भला बताओ जो जिन्दगीभर जिनके लिए मरता रहा, जिनके लिए बड़े-बड़े पाप कार्य किए, न्याय अन्याय कुछ नहीं गिना उसे मरण समयमें भी शान्तिसे मरण नहीं करने देते, उसके पास पहुंचकर रो धोकर उसका परिणाम और भी अधिक बिगाड़ते हैं जिससे वह मरकर कुगतिमें जाता है, तो यह उसके लिए अनर्थ ही तो रहा। तो इस प्रकारसे मरण समयमें किसीके परिणाम बिगाड़ना यह परिजनोंको उचित नही है। अरे समाधि मरण तो एक महोत्सवकी चीज है, अगले भवमें इसका कल्याणहो उसकी प्रक्रियाका यह अवसर है। तो यह श्रावक गृह कुटुम्ब आदिकसे ममत्व तजता है, आहार आदिकका त्याग करता है। आहार आदिकके त्यागको भी महत्त्व क्यों दिया गया—सल्लेखनाके लिए। तो प्रथमबात तो यह है कि आहार आदिके सम्बंधका राग छूट जाय विकल्प छूट जाय। दूसरी बात यह है कि मरणकालमें अत्यन्त रुग्ण अवस्थामें आहारपान करना कष्ट बढ़ाने वाला होता है। वैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ही जीवनमें अच्छी हालतमें भी कोई अधिक खा ले, गरिष्ट खाये तो दो चार घंटे उसे भी लेटना पड़ता है। पर जहां शरीर इतनी शिथिल अवस्थामें है, बुढ़ापा है, रोग है वहां आहारका त्याग करना लाभदायक है। आहारका त्याग करना उसके खुदके लिए लाभकारी है, शारीरिक आरामके लिए भी आहार आदिकका त्याग करना आवश्यक हो जाता है। सो धर्मके लिए भी यह ही बात है।

मरणसमयमें श्रावकके ज्ञान और वैराग्यकी वृद्धि—यह श्रावक ऐसे कठिन रोगके समय जहां जानता कि यह देह नष्ट होने वाला है तो सल्लेखना पूर्वक देहको त्यागता है उसका उस समय यह यत्न रहता है कि मेरा स्वभाव दर्शनज्ञान चारित्र है। तो यह स्वभाव मेरा न मिटे, इसका विकास मेरेमें रहे और ऐसे अपने अन्तः स्वरूपकी भावना सहित मरण करूं, यह उस श्रावकका लक्षण है। देखिये मरणके समयमें जिसकी धारा मोहकी ओर लग जाय वह बड़े कठिन संक्लेशसे मरता है और जिसकी विचारधारा कुछ धर्मकी ओर लग जाय तो उस समय उसे बड़ी अधिक विरक्ति रहती है। मरण समयमें ज्ञानका बढ़ना, वैराग्यका बढ़ना यह सुगमहो जाता है। जैसे किसीको फांसीका हुक्म दिया गया और फांसी वालेसे पूछा जाय कि बोल तुझे कौन सी मिठाई खाना पसंद है, जो मांगेगा वह खिलायी जायगी। तो क्या वह कोई मिठाई खानेकी इच्छा करेगा? अरे वह जानता है कि अभी कुछ ही देर बाद मैं तो मर ही रहा हूं, तो उसकी इस ओर बुद्धि नहीं लगती। और यह जो स्वयं मर रहा है तो मरण समयमें क्या उसे यह रुचेगा कि मैं बच्चोंको खिलालूँ उनसे थोड़ा प्यार करलूँ? हां कोई-कोई मूर्ख ऐसे भी होते जो कि फांसीके समयमें रसगुल्ले भी खानेको मांग सकते या मरते समय भी यह कह सकते कि अमुक बच्चेको बुलाकर दिखा दो, मेरी छाती ठंडी हो जायगी। यों मूर्ख लोग तो कह सकते, मगर विवेकी पुरुषको उस स्थितिमें ज्ञान और वैराग्य बढ़ता है।

बाह्य इन्द्रियोंकी बेहोशीके अवसरमें अन्तः चेतनाकी संभवता—जिसने जीवनमें ज्ञानसाधनाकी, वह कदाचित बेहोश हो जाय तो लोग भले ही समझें कि यह बेहोश हो गया, इसकी हालत खराब है पर कुछ पता नहीं कि बेहोशीमें आत्मसाधनाको और सहयोग मिलता है। अगर होश हो तो एक बार बाहरी चीजें देखनेका भी विकल्प बढ़े, पर बेहोशी तो इन इन्द्रियोंकी है। वह बाहरी चीजें नहीं देख सकता किन्तु जिसके ज्ञानकी धारा है वह भीतरमें ज्ञानानुभव कर रहा है। मुझे इस सम्बन्धमें ऐसा निश्चय कैसे हुआ कि हम एक बार ब्रह्मचारी छोटे लालके साथ गोहदसे मऊ जा रहे थे तो आहारके बाद बड़ी जल्दी चले, १४—१५ मील तक चले तो रास्तेमें एक जगह ब्रह्मचारी छोटेलाल जीका मकान पड़ता था, बस वहीं ठहर गए। वह छोटा सा गांव था, दूसरे हम थके हुए भी बहुत थे जाकर सामायिक किया और सामायिक करके लेट गए, जल्दी ही नींद आने लगी, उसदिन प्रवचन नहीं कर सके। उस नींदके बीचमें ही ब्रह्मचारी छोटेलाल जीकी पुत्र बहुवें वगैरह भी आयीं, वे लोग आपसमें कुछ बातचीत भी करते रहे, पर हमें पता नहीं कि क्या बातचीत करते रहे धीरे-धीरे। हम वहां सो गए। उस सोते हुएके बीचमें ही ब्रह्ममुहूर्तमें एक स्वप्न आया कि हम सामायिक कर रहे हैं, उस सामायिकके बीचमें इस प्रकारका ध्यान बना कि हम स्वानुभवका प्रयास कर रहे हैं, उसी अवसरपर दो देवियां सामने आकर अगल बगल बैठी हमारे प्रति कुछ प्रशंसा भरे शब्दोंमें स्तुति कर रही हैं। हमारा ध्यान स्वानुभवके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार्यमें और भी अधिक बढ़ता जा रहा था। स्तुतिकी धीमीसी आवाज सुनाई पड़ रही थी, हम स्वकी ओर लीन हो रहे थे देखिये यह सब स्वप्नमें बीती बात कह रहे। यह स्थिति कुछ देर रही पश्चात् नींद खुल गई तो उस स्थितिमें मैं क्या देखता हूं कि वहां कहीं कुछ नहीं है, न देवियां न उनका गानतान। मैं उस समय यह अनुभव कर रहा था कि वह मेरी स्वानुभवकी स्थिति थी। अब मेरे मनमें एक भावना जगी कि यह नींद क्यों खुल गई, यदि वैसा ही स्वप्नमें कुछ समय और चलता रहता तो कितना अच्छा होता। तो देखिये उस सोते हुएकी स्थितिमें भी स्वानुभवकी बात देखनेको मिली, तभीसे हमको तो ऐसा निश्चय हो गया कि इस देहकी चाहे कैसी ही अपवित्र स्थिति हो, बेहोशी हालत ही क्यों न हो पर वहां अपने परिणाम सुधारनेका बड़ा मौका मिलता है। उस स्थितिमें भी इस देहका भी ममत्व छोड़कर रत्नत्रय धर्मकी आराधनाकी जा सकती है।

सल्लेखनामें रत्नत्रय धर्मकी रक्षाका उद्यम—देखिये यह देह विनश्वर है। कोटि यत्न करनेपर भी यह सदा न रहेगी। और फिर यह देह तो हड्डी चामका पिण्ड है जिसे लोग थोड़ी देरमें जला देंगे और जिसे कहते हैं कपालक्रिया याने मुर्दाकी खोपड़ी फोड़ना उस जलानेके प्रसंगमें कुटुम्बीजनोंके किसीके हाथसे बांससे खोपड़ीमें मार लगाई जाती है थोड़ा जलनेके बाद ताकि उसमें भी दरार पड़ जाय और अच्छे प्रकार जल जाय। ये सब बातें होती हैं इस देहकी। उस देहसे क्या ममत्व करना? इस देहमें ममत्व करनेका फल है संसारमें परिभ्रमण। अब तक जन्ममरण करते चले आये हैं। समाधितंत्रमें एक जगह बताया है कि देख तुझे देह बराबर मिलते रहेंगे, टोटा न रहेगा, और अगर देह न चाहिए तो उसका सीधा तरीका यह है कि तू इस देहके स्वरूपको और अपने स्वरूपको सही-सही जानकर इस देहसे ममत्व न कर और अपने सहज चैतन्यस्वरूपमें आत्मतवका अनुभव बना कि मैं यह हूं, यह कुञ्जी है देहसे छुटकारा पानेकी। तो यह व्रती श्रावक सल्लेखनाके कालमें चिन्तन कर रहा कि देह तो अनन्तधारण किये हैं और छोड़े हैं, पर रत्नत्रय धर्म आज तक प्राप्त नहीं हुआ, उसकी निशानी क्या है कि अब तक संसारमें रुल रहे। सो अब मैं रत्नत्रय धर्मकी रक्षा करूंगा, इस देहकी नहीं। किसीका घर जलने लगता है तो वह कोशिश यह करता है कि घरतो जल जायपर घरके भीतर रखे हुए जो कीमती रत्न हैं उन्हें उठा लें, ऐसे प्रसंगमें वह अग्नि बुझानेका मुख्य काम न सोचेगा। मुख्य काम सोचेगा अपने कीमती रत्नोंको वहांसे हटा लेनेका। उस समय उसका निर्णय बनता है कि घर जल रहा तो जल जाने दो, इसमें तो १०—२० हजारका ही नुकसान होगा, मगर लाखोंकी कीमतके जो रत्न रखे हैं उन्हें तो निकाल लूँ। तो ऐसे ही जब यह देह मिट रहा है, मरण हो रहा है तो यह सोचता है कि देह मिटने दो, पर अपना जो रत्नत्रय धर्म है उस धर्मकी तो रक्षा करलूँ। यह धर्म तो मेरे साथ आगे भी रहेगा पर यह देह तो आगे नहीं रहनेका। तो ऐसे कठिन रोगके प्रसंगमें यह व्रती श्रावक अपने सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी रक्षाके लिए सर्वकुछ परित्याग कर देता है।

मरणसमय धर्मदृष्टि न करनेकी अक्षम्य चूक—यह देह तो संसारमें रुलाने वाला है। जो देहकी ममता रखेगा वह संसारमें रुलेगा और यह रत्नत्रय धर्म मुझे संसारके सुखोंसे छुटकारा दिलायगा, सिद्ध अवस्था प्राप्त करायेगा और सदाके लिए आत्मा पवित्र हो जायगा। तब देहकी परवाह करना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि अपने रत्नत्रय धर्मकी रक्षा करना? यह श्रावक उस कालमें अपने रत्नत्रय धर्मकी रक्षा करता है। और धर्म कहीं बाहर है क्या? धर्म आत्माका स्वरूप है, आत्मामें ही लखना है, उपाय भी स्वाधीन है, तत्त्व भी स्वाधीन है, क्रिया भी स्वाधीन है। जब यह जीव तीन चीजोंका पिण्डोला है—शरीर, कर्म और जीव, और शरीरमें अनन्तानन्त परमाणु हैं, कर्ममें भी अनन्तातन्त परमाणु हैं, तो प्रत्येक परमाणुकी और इस जीवकी सत्ता जुदी-जुदी है। एकमें ये मिल नहीं गए, स्वरूपतः संयोग है, बंधन है मगर किसीका स्वरूप किसी दूसरे रूप हो जाय ऐसा त्रिकाल सम्भव नहीं। तो जो मैं हूं, स्वयं सत् हूं। अपने स्वरूपसे हूं तो उस ही वास्तविक सत्को तो निरखना है कि मैं अपने आप अपने सत्त्वके कारण स्वयंमें क्या हूं। यह तत्त्व जिसमें आत्माकी धुन है और यह ही जीवनका लक्ष्य है, उसको मिल जाता है और जिसके जीवनमें लोभकषाय है, बाह्य वस्तुवोंकी तृष्णा और संग्रह करना और इतना बढ़ जाना यह ही जिसका ध्येय है उसको यह अंतस्तत्त्व कभी प्राप्त नहीं हो सकता। थोड़ा विवेक रखना चाहिए कि बाह्य पदार्थ जिनकी सत्ता भिन्न है उनके लगावसे, ममत्त्वसे, मोहसे मेरी बरबादी है, इस समय भी बरबादी है, आगे भी बरबादी है। मुझे तो अपने आपमें अपने स्वरूपकी आराधना चाहिए, यह ही एक मुख्य लक्ष्य रहता है व्रती श्रावकका, जिसने कि इस मरणके अवसर पर सल्लेखना व्रत धारण किया है। सारे जीवनभर जो व्रत तप धर्ममें आचरण किया है उनको सफल करनेका यह ही तो अवसर है कि मरण समयमें चूके तो वह एक बड़ी चूक कहलाती। तब ही तो लोग कहते हैं 'अन्तमति, सो गति', मरण समयमें जैसी बुद्धि होती है वैसी गति होती है। और होता भी यही है। जिस गतिमें जानेको है उसीके अनुरुप उसकी बुद्धि बन जाती है। तो इस सल्लेखनाके प्रकरणमें यह ध्यान किया गया हैं कि व्रती श्रावक समग्र व्रतोंके पालनका अब फल पायगा। इस अवसरमें सल्लेखना व्रत करनेसे ही उसका कल्याण है।

अंतः क्रियाधिकरणं तपः फलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं समाधिमरणे प्रयतितव्यं॥ १२३॥

अतःक्रिया आधार, सो तप-फल सर्वदर्शी प्रशंसै।
अतः सामर्थ्य प्रमाण, समाधिमरण प्रयत्न योग्य॥

अन्तः क्रियासे तपश्चरणकी सफलता—जीवनमें जितने भी व्रत, तप, संयम किया है और इस सदाचारके फलमें विशुद्धि प्राप्त की है तो उसकी सफलता अन्तमें समाधिमरणसे होती है। अन्तः क्रिया कहते हैं समाधिमरणको। समाधिमरणमें रागद्वेष दूर हों, अपने आत्माके सहज स्वभावकी दृष्टि बने, इसका पुरुषार्थ चलता है। सो जिन्होंने इस अन्तः क्रियाको किया उन्होंने ही जीवनमें किए हुए व्रत, तपका फल प्राप्त किया। ऐसे सर्वज्ञ भगवानमें भव्य आत्माकी प्रशंसा रहती है। इस कारण जितने भी विभव हैं समस्त विभवके अनुसार अर्थात् जो भी शक्तिविकास पाया है उस पूरी शक्ति विकासके अनुकूल समाधिमरणका प्रयत्न करना चाहिए। विभव क्या क्या किया? समाधिमरण करने वाले श्रावक व मुनिने प्रथम तो यह शास्त्रोंका ज्ञान, तत्त्वज्ञान, नयविज्ञान, सर्वपरिचय पूर्वक जिसने अपने आत्माके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्वरूपको स्पष्ट परखा है वैभव यह ही है वास्तविक। बाह्य पौद्गलिक जड़का वैभव यह कुछ वैभव नहीं है। आत्माके काम आत्माकी बुद्धि, आत्मतत्त्वका परिचय ये काम आते हैं। कितने भी संकट हों जीवनमें, जहां यह ध्यानमें आया कि बाहरमें बाहरी पदार्थोंका परिणमन होता रहता है। यहां तो इस हीके गुणोंका परिणमन हो पाता है। बाहरसे संकट नहीं आते। संकट तो अपनी कल्पनाका नाम है। भला जगतमें कौन जीव बुरा है, कौन जीव भला है?

अन्तः क्रियाका भाव—सभी जीव अपनी सत्ता लिए हुए हैं, जैसे मेरे परिणमनसे मेरा परिणमन बनता है ऐसे ही दूसरे जीवोंके परिणमनसे उनका परिणाम बनता है। वे मेरे लिए बुरे कैसे? वे अपने लिए अपना काम कर रहे हैं, मेरा कुछ कर ही नहीं सकते। वस्तुका स्वरूप ऐसा है। मैं अपने लिए अपना काम कर रहा हूं। मैं दूसरेके लिए कुछ कर ही नहीं सकता। ऐसा स्वपरविभाग इस ज्ञानी श्रावक व मुनिके हुआ है जिसके कारण अब वह संकट नहीं मानता। जब बड़े-बड़े संकट सहनेकी वार्ता सुनते हैं कि बड़े-बड़े मुनियोंने दूसरेका उपसर्ग सहा, शेरनीने सुकुमारके अंग चीथा और वे विचलित न हुए। बहुतसे मुनि घानीमें पेले गए पर वे विचलित न हुए। आग लगा दी किसी बैरीने पर वे मुनि विचलित न हुए। ये सब बातें सुनकर अचरज होता है पर अपने आपमें एक अंदाज बनाइये—जैसे प्रकट भिन्न धन वैभव आदिकमें यह बुद्धि बन जाती कि इन बाह्य पदार्थोंके परिणमनसे यहां कुछ भी बिगाड़ नहीं होता तो इस दृढ़ निश्चयके कारण बाहरमें कुछ होता रहे पर आप संकट नहीं मानते ऐसे ही विशेष बड़े मुनिजनोंने इस देहके प्रति अन्तर्बुद्धि कर ली है, स्वरूपास्तित्त्वका ऐसा दृढ़ अभ्यास बन गया है कि उन्हें यह देह भी अत्यन्त पृथक् दिखता है। हो रहा है उपद्रव देहपर, इसका ज्ञाताद्रष्टा बन रहा है, पर विचलित नहीं होता। इस जीवनमें और साधना करना ही क्या है? धर्मके नामपर तो बहुतसी बातें होती हैं पर जो धर्म पालनका मूल उद्देश्य है वह ध्यानमें न रहे तो उन सारी क्रियावोंका क्या परिणाम है? प्रत्येक धर्मके काममें यह बात दृढ़ बनाना है कि मेरे स्वरूपसे अतिरिक्त जो कुछ भी परपदार्थ हैं, चेतन हों, अचेतन हों उनके परिणमनका प्रभाव उन्हीं तक ही है, मुझमें नहीं आता। इसकी आस्था बनाना है, इसको प्रायोगिक रूप देना है, यही वास्तविक धर्मसाधना है, बाकी तो जो कुछ भी किया जाता है देवदर्शन, स्वाध्याय, सामायिक, सत्संग वे सब इस ही अंतस्तत्त्वके अभ्यासके लिए हैं, इसे कहते हैं अंतः क्रिया। अपने आपके स्वरूपमें प्रदेशमें अपने आपकी विशुद्ध परिणति जगना यह है अंतः क्रिया।

ज्ञानी आत्मापर स्वरूप दर्शनके कारण बाह्यपरिणतियोंका अप्रभाव—यदि कोई एक बार ऐसा ही सोचले कि मानों मैं इस मनुष्यभवमें न होता, किसी अन्य पर्यायमें होता, क्या अन्य पर्यायोंमें थे नहीं? यदि मैं किसी अन्य पर्यायमें होता, कीड़ामकोड़ा पशुपक्षी कुछ भी होता तब मेरे लिए यहांका दृष्यमान समागम तो कुछ भी न था। अब मनुष्यपर्यायमें आनेपर यह मानलें कि ये दृष्यमान पदार्थ मेरे लिए कुछ नहीं हैं, कैसा आपने आपमें दृढ़ बनना पड़ता है धर्मपालनके लिए। मैं अकिञ्चन हूं, धर्मपालनकी दिशामें मान, अपमान, प्रशंसा, निन्दा, परिचय, नाम इनका कुछ महत्त्व नहीं है। ये कुछ भी नहीं है। चाहे लोगोंकी दृष्टिमें मैं मूर्ख कहलाऊं, किन्हीं भी शब्दोंमें लोगोंके द्वारा पुकारा जाऊं फिर भी वह उन लोगोंका परिणमन है। उनकी योग्यताके अनुसार उनका वह परिणमन है। मैं तो अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सहजस्वरूपको देखूँ और इस ही में प्रसन्न रहूं, यही मेरा परिणमन है और बुद्धिमानीका काम है। जो मरणके सम्मुख है, कुछ ही समयमें शरीरको छोड़ देने वाला है, वह ज्ञानी पुरुष क्या बाहरी बातोंमें उपयोग फंसायेगा, अपनेको अकिञ्चन अनुभव करेगा। मैं अपने आपमें पूर्ण स्वच्छ हूं। बाहरी समस्त पदार्थोंमें से अकिञ्चन हूं। यह तो सब बड़ी विपत्ति थी जो कुटुम्बीजनोंमें, मित्रजनोंमें एक स्नेह बनाया और जिस प्रेमके आगे दूसरे जीवोंको तुच्छ समझा, गैर समझा, ऐसी जो उसने अपने परिणाममें कवायद की यह उसके ऊपर विपदा थी। यह सब कुछ करने योग्य न था, यह ध्यान जाता ज्ञानी पुरुषका अब इस मरणसमयमें। जो ध्यान मरण समयमें होता है वह ध्यान जीवनमें भी सदा करना चाहिए, पर जीवनमें चूँकि अन्य काम भी पड़े हुए हैं इसलिए यथाशक्ति थोड़ा थोड़ा चलता है किन्तु मरण समयमें तो वह अपने को रिटायर्ड अनुभव कर रहा। सर्व कामोंसे मैं निवृत्त हूं। एक शब्द दिया है वैयावृत्यका। वैयावृत्य करना साधुजनोंका कार्य है, उस वैयावृत्यका अर्थ क्या है? व्यावृत पुरुषका काम। व्यावृत कहते हैं रिटायर्डको। सर्वद्रव्योंसे जो निवृत्त हो गया है उसे अब जगतके दंदफंद मायाजाल वचनालाप, इनसे क्या प्रयोजन है? मरणसमयमें वह अपनेको ऐसा अनुभव करता है कि अब मेरा क्या प्रयोजन रहा किसीसे।

समाधिमरणका महत्त्व—परिणामोंमें अत्यन्त विशुद्धि बने, पवित्रता जगे उसका साधन है मरण काल। जिसको कुबुद्धि है उसको सबसे बुरा है मरणकाल। जिसको सुबुद्धि है उसके कल्याणका अवसर है मरणकाल। **जन्मसे मरणका महत्त्व अधिक है। जन्मके बाद मोक्ष नहीं है मरणके बाद मोक्ष है। उस मरणका नाम है निर्वाण अथवा पंडित पंडित मरण। आयुका क्षय ही तो हुआ है। मरणके बाद कल्याण है, जन्मके बाद कल्याण नहीं है अतएव मरणका महत्त्व जन्मसे अधिक है।** लोग शान्त आनन्दमय ही तो होना चाहते हैं। जिस विधिसे आनन्द मिले उस विधिमें क्या संकोच? अपनेको एकाकी केवल अपने स्वरूपमात्र निरखनेमें आनन्द जगता है। तो बाहरी पदार्थोंमें बुद्धि आनेसे कष्ट होता है। कर्मका उदय विचित्र है सम्हले। सम्हले मनुष्य भी कर्मविपाकवश समय-समयपर क्षुब्ध होते रहते हैं। बड़े-बड़े मुनिराज भी सर्वकुछ त्याग करनेके बाद भी इन विकल्पोंसे छूट नहीं पाते, फिर भी जो भीतर आस्था है और बारबार इस आनन्दमय सहज स्वरूपपर दृष्टि जाती है उसके प्रतापसे संकटोंको सहकर भी पार हो जाते हैं, किन्तु इसके लिए चाहिए विशिष्ट ज्ञानबल, अन्तःक्रिया। तो सर्वज्ञ वीतराग देवने कहा है कि तपश्चरण आदिकका फल तो समाधिमरणमें है। समता सहित उपयोग होना यह है सल्लेखना। यदि अन्तमें परिणाम बिगड़ा तो जीवनभर किया हुआ व्रत तप संयम आचरण ये सब फीके हो जाते हैं।

सम्यक्त्व न होनेपर भी तपश्चरणके प्रभावका दिग्दर्शन—तपका फल लोकमें तो सुगतिमें उत्पन्न होना है। मिथ्यादृष्टि भी तप करें तो तपश्चरणके प्रभावसे नवग्रैवेयकमें जन्म होता है। उत्कृष्टसे उत्कृष्ट इतनी उन्नति हो सकती है मिथ्यादृष्टिकी तपश्चरणके प्रभावसे, मगर होता व्यवहाररूपसे जैनशदर्शन अंगीकार करके और निर्ग्रन्थ मुनि होकर भीतरी भावसे निष्कपट तपश्चरण करनेसे। इसमें भी बहुत ऊंची साधना चलती है, किन्तु सिर्फ एक भीतरकी कुञ्जी नहीं सुलझ पायी जैसे स्नान करनेकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बावड़ी आदिक पर एक चादर ही बिछा दो थोड़ा ऊपर तो उस ही आड़की वजहसे स्नान नहीं कर सकते ऐसे ही बहुत ज्ञान हो जानेपर भी इस चैतन्यसमुद्रके ऊपर भ्रमकी एक चादर पड़ी है। वह कोई मोटी पिण्डरूप नहीं है, काल्पनिक उस भ्रमकी चादर ओढ़े रहनेसे यह जीव अपने इस ज्ञानसरोवरमें स्नान नहीं कर पाता, तड़फता रहता है, उस तपश्चरणका इतना ऊंचा प्रभाव है कि नवग्रैवयक तक उत्पन्न हो ले पर उसका फल क्या मिला? रहा वह ३०-३१ सागर तक अहमिन्द्र, जिसमें अरब खरब वर्ष नहीं, कल्पना भी नहीं हो सकती, इतने असंख्याते वर्ष तक वह अहमिन्द्र रह रहा मगर वे असंख्याते वर्ष भी अनन्त कालके सामने बिन्दु बराबर भी नहीं है। वहांसे चलकर फिर यहीं मनुष्य होना पड़ता है, और सम्यक्त्व न होनेपर तिर्यञ्च आदिक योनियोंमें भटकना पड़ता है।

सहजात्मतत्त्वकी भावनासे आत्मोद्धार—यदि सम्यक्त्वसहित जीवन होता तो यहां भी आनन्द होता और निकटकालमें सर्वसंकटोंसे छुटकारा मिल जाता। गुणीजनोंमें प्रमोद हो, हर्षहो, ऐसा अपना परिणाम बनाइये, बढ़ाइये, यह है वह प्रारम्भिक उपाय कि जिस उपायके बलसे हम आगे बढ़कर आत्मकल्याण करने लगेंगे, जगतकी भटकनासे बच लेंगे। और प्रयत्न कीजिए कि मेरेको तत्त्वज्ञानका लाभ हो। बाहरी संग प्रसंग अच्छे हों बुरेहों, मनपसंद हों, मनको अनिष्ट हों, उन सब मायाजालमें सिर रगड़नेसे लाभ कुछ न मिलेगा, केवल पाप कलंक ही हाथ रहता है और एक आत्मस्वरूपका परिचय, बोध, दर्शन इनकी अभिमुखता होनेसे अपने आपमें विशुद्धि जगती है। आनन्द जगता है, शान्ति मिलती है और ऐसा सिलसिला बन जाता कि जितने दिन संसारमें रहना है उतते समय भी यह शान्त रहेगा, धार्मिक वातावरणमें रहेगा और जल्दी ही निर्वाण पा लेगा। तो बाहरकी बातोंमें क्रियामें समय व्यर्थ गया, बड़ी-बड़ी कल्पनायें कीं—मेरे लड़के अच्छे हो गए, ऐसे पढ़ लिख गए, यह काम कर रहे, अरे तुम्हारा क्या है वहां? जैसे जगतके अन्य जीव हैं वैसे ही ये भी जीव हैं, अत्यन्त भिन्न। इस भवमें ही आपकी जिम्मेदारी नहीं ले सकता कोई, तो फिर परभवकी कोई क्या जिम्मेदारी लेगा? मोह बहुत कठिन विपत्ति है? मोह विपत्तिसे बचना भी बहुत सुगम है, यदि मोहविनाशके उपायभूत अन्तस्तत्त्वकी धुनके लिए कमर कस लें तो, अन्यथा मोहके वश होकर संसारमें रुलना ही रुलना रहेगा। साधर्मीजनोंमें, गुणीजनोंमें प्रमोद होना, प्रतीति होना यह उन्नतिका सबसे प्रारम्भिक उपाय है। यदि यह बात हममें न बन सके तो हम कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं हैं। रत्नत्रयका प्रेम उसके ही सम्भव है जो अपनेमें अपने स्वरूपकी आराधना करता है और उसका प्रयोग कर कुछ पाता है।

सर्वमैत्रीभाव आत्मतत्त्वभक्तिका महत्त्व—जिस अन्तः क्रियाका साधन हमें मरण समयमें चाहिए वह अन्तः क्रियाका अभ्यास हमारा अभीसे ही जीवनमें हो। अपने जीवनको इतना ही बनालें पहले कि मेरे द्वारा किसी भी जीवको कष्ट न पहुंचे, यह बात तब सम्भव है जब अपनेमें मान कषाय न रहेगी। मानकषायके रहनेपर यह बात मुश्किल है कि मेरी प्रवृत्तिसे किसीको कष्ट न पहुंचे। कषाय जगेगी, उसमें प्रवृत्ति बन जायगी। इससे आत्मरक्षा इसीमें है कि मैं अपनेमें स्वरूपको तो देखूँ जिस स्वरूपमें कोई रूप नहीं, रस नहीं। दुनिया मुझे जाने कैसे, देखे कैसे, दुनियाके लिए मैं कुछ नहीं, मैं अपने लिए तो हूं क्योंकि मैं अपनेको अनुभवता हूं, पर यह मैं दूसरेके लिए कुछ नहीं हूं। दूसरा मेरे लिए कुछ नहीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। भले ही साधर्मी प्रेमके कारण बातें होती हैं, परस्पर सहयोग होता है, पर वस्तुस्वरूप यह बतला रहा है कि जिस वस्तुका का जो परिणमन है वह उसमें ही समाप्त होता है, उससे बाहर नहीं। सल्लेखनामें यह व्रती चिन्तन कर रहा है कि अहो अनन्त काल इन विषयकषायोंमें ही वृत्ति रहकर व्यतीत हुआ। अनन्त जन्म पाये, अनन्तानन्त मरण हुए, पर एक यह रत्नत्रय धर्म प्राप्त नहीं हुआ। अपना जीवन सफल करना है, अपने आत्माका उद्धार करना है तो आत्माको जानें, आत्माके सहजस्वरूपमें अपना अनुभव बनावें और इस ही में मग्न होनेका लक्ष्य बनायें। बाहरमें मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति करनी पड़े तो शुद्ध हृदयसे व्यवहार बने, कोई मेरा बैरी नहीं है, कोई मेरा विरोधी नहीं है, कोई मेरा अहित करने वाला नहीं है। सर्वजीव मेरे स्वरूपके समान हैं, सर्वजीवोंके उस भीतरी भावपर दृष्टि जाय तो इस नातेसे सब आपके हैं, सर्व जीवोंमें मैत्री भाव हो, गुणी जनोंमें प्रमोद भाव हो। देखिये ये दो बातें अतीव आवश्यक हैं अन्यथा आत्माकी उन्नति नहीं हो सकती। तो जीवनमें ये दो आधार शिलायें बनालें। भैया, किसी भी प्रसंगमें चाहे खुद दुःखी हो लें, आपका दिल आपके पास है, ज्ञानबलसे अपना दुःख दूर कर लेंगे, पर कोई चेष्टा ऐसी न बने कि मेरे द्वारा किसीको दुःख पहुंचे तो वह बात इतनी बढ़ती है अपनी ओरसे, दूसरेकी ओरसे हम ही खुद उल्झनमें पड़ जाते हैं। इससे आत्मभक्ति करना प्रभु भक्ति करना, सबका भला सोचना इस प्रकारका जीवन होना चाहिए।

अन्तमें सल्लेखना पाये बिना जीवनभर किये गए तपश्चरणकी व्यर्थताका दृष्टान्तपूर्वक समर्थन—व्रतीश्रावक मरणके अवसर पर चिन्तन कर रहा है। तपश्चरणका फल अहमिन्द्र होना, चक्री होना, अनेक पद्धारी होना है, पर समाधिमरण हो तो धर्मकी धारा बनी रहेगी और संसार संकटोंसे पार होनेका अवसर मिल जायगा, इसलिए स्वभावकी आराधना सहित मेरे क्षण व्यतीत हों, निःशंक निर्भय रहना हो। निःशंक निर्भय रहते हुए मेरा मरण हो जिससे जिसकी दृष्टि लगाकर यहांसे जाऊं तो नये भवमें भी उस दृष्टिका पात्र बना रहूं। ऐसा यह श्रावक सल्लेखना व्रत धारण करने वाला अपने परिणामोंको विशुद्ध रखता है। यदि समाधिमरण न बने तो उसकी गति ऐसी है जैसे कि किसीने परदेश जाकर बहुत द्रव्य कमाया और सारा द्रव्य साथ लेकर चला और नगरके किनारे पहुंचते ही चोरोंने लूट लिया तो उसका द्रव्य कमाना किस कामका रहा? ऐसे ही सारे जीवनभर व्रत तप करके परिणामोंको विशुद्ध बनाया और अन्तमें मरण समयपर वह सारा परिणाम लुट गया, परिणाम खोटा कर लिया, विषयकषायोंमें उपयोग लग गया तो वह करीब व्यर्थ सा ही है। यह सब निर्णय किए हुए है यह व्रती श्रावकसो अन्त समयमें यह अपनेको बहुत सावधान रख रहा। अब सल्लेखना करने वाला व्यक्ति प्रारम्भमें क्या काम करता है यह बात बतलाते हैं।

स्नेहं वैरं संङ्ग परिग्रहं चापहाय शुद्धमनाः।
स्वजनं परिजनमपि च क्षांत्वा क्षमयेत्प्रियैर्वचनैः॥ १२४॥

स्नेह बैर और संग, परिग्रह त्याग शुद्ध मन हो करके।
क्षमा स्वजन-परिजन प्रति, करै करावै प्रियवचनों से॥

Version 1

सल्लेखनाके समय व्रतीश्रावकका निर्वैर व निःस्नेह होनेके लिए चिन्तन—इस वर्तमान भवको छोड़कर जानेकी तैयारी रखने वाला यह श्रावक यहांके सर्व समागमोंसे विरक्त होता है, स्नेहको, बैरको, परिग्रहको त्यागकर यह शुद्ध हृदय वाला श्रावक दूसरोंको क्षमा करके दूसरोंसे क्षमा लेकर यह अपनेको निर्मल बना रहा है। अपने कुटुम्बीजनोंसे या अन्य जनोंसे सबके साथ यह स्नेह बैरको छोड़ देता है। यह विचार करता है कि यह मैं इस पर्यायमें आया, ऐसा ही कर्मोदय था, इस पर्यायको भुगतना पड़ा, अब इस मनुष्य देहका उपकार करने वाला जो पदार्थ है, भोजन धन आदिक जो भी इस शरीरके पोषणमें मददगार हैं अथवा इस शरीरके भोगोपभोगके साधन हैं उन साधनोंको जिन्होंने मिला दिया उन्हें तो इष्टमित्र मान रहे और जिन्होंने इन साधनोंमें बाधा डाली उन्हें गैर मान रहे, इस पर्यायसे मेरा क्या सम्बन्ध? यह तो मैं नहीं हूं, पर बंधन है, और उस बंधनसे इस पर्यायके उपकारकको मित्र मानता रहा और पर्यायका अपकार करने वालेको बैरी मानता रहा। सो मित्रजनोंको देखकर मैं खुश रहता था, उनका सम्मान करता था, उनका पोषण करता था और जो इस पर्यायका अपकार करने वाले, द्रव्यादिकको नष्ट करने वाले लोग थे उनको मैं अपनी कल्पनासे चारित्रमोहके कारण बैरी मानता रहा। अब जिस पर्यायके पीछे मैं.लोगोंको बंधु और दुश्मन मानता रहा, ज़ब यह पर्याय ही नष्ट होने वाली है तो अब मैं किससे मित्रता शत्रुता करूं। यहां कौन मुझको जानता है। इन लोगोंको चाम दिखता है यह चाम पौद्गलिक है।

सल्लेखनाके समय व्रती श्रावकका क्षमापण—सल्लेखना व्रतधारी श्रावक वस्तुस्वरूप सहित चिन्तन कर रहा है। अब सबसे क्षमा करना कराना यह ही उचित है ताकि अन्तिम विकल्प भी समाप्त हो और अपने आत्माकी आराधनामें लग जाऊं। सो जिन लोगोंके प्रति कुछ बुरा सोचा था जो अपने अभिमानके कारण ही बिना कारण ही बैर करने वाले थे उन सभीको बुलाकर नम्र होकर क्षमा ग्रहण कराता है, मेरी जो भूलचूक हुई हो उसे आप क्षमा करें। आप तो सज्जन पुरुष हैं, मैं अज्ञ रहा, जो किसी प्रकारका कटु व्यवहार बन गया उस अपराधको क्षमा करें। देखिये जैसे जीवनमें किसीने अपराध भी कर लिया, कुछ गल्ती भी कर लिया तो भी उसको ऐसा अभिमान रहता है कि मैं क्यों क्षमा मागूँ। जीवनमें प्रायः ऐसा चलता है, पर मरणके समयमें नम्रता आ जाती है और वहां यह ऐंठ नहीं रहती कि मैं क्यों क्षमा मांगूं? उन दोनों स्थितियोंमें फर्क है। जीवनमें तो यह बात है कि मुझे आगे भी रहना है, जीवन तो चल ही रहा है। मरणमें यह बात है कि कुछ समय बाद मेरा मरण हो ही रहा है फिर मैं किसके लिए ऐंठ बगराऊं? यों अन्त समयमें उसके परिणाम कोमल हो जाते हैं, सो जिसके प्रति कुछ भी कटु व्यवहार रहा या जिसने अपनी ही भूलसे अभिमानके कारण मुझसे बैर माना उन सभीसे यह क्षमा याचना करता है, आप मुझे क्षमा का दान कीजिए। यह श्रावक यदि किसीका कुछ धन धरती आदिक दबा लिया हो तो उसको बड़े प्रेमसे विनयसे कह कर वापिस कर देता है। मरण समयमें यह भावना बन ही जाती है कि मैं मर ही रहा हूं, धरा, धन अमुकका कपटसे कुछ अधिक लिया है तो यह मेरे क्या काम आनेका है। मैं तो इस भवको छोड़कर जा ही रहा हूं, उसके परिणामोंमें उदारता आ ही जाती है और जिसका जो कुछ धन आदिक कुछ हड़प कर लिया हो वह उसे पूरा वापिस कर देता है। मैंने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दुष्टतासे या छलसे आपका इतना धन हड़प लिया था सो आप मुझे क्षमा करें और यह द्रव्य आप अपना लीजिए। मैंने उस समय कषायमें आकर दुराचार किया। मैं अन्तरङ्गमें पश्चाताप करता हूं।

मरणकालमें कुछ भी विवेक होनेपर परिणामविशुद्धिकी प्रधारा—मरण समयमें कितनी ही बातें ऐसी होती हैं जिनसे परिणामोंमें उज्ज्वलता और निर्मलता आती है। कोई मनुष्य साल दो सालके लिए भी विदेश जाता है तो जिनके साथ कुछ अनुचित व्यवहार बने या गाली गलौचकी बात बने तो उनसे भी क्षमा मांगली जाती है। अब यह तो इस शरीरसे सदाके लिए विदा हो रहा है और आगेका कुछ भरोसा नहीं कि मिलाप हो। भरोसा क्या, होगा ही नहीं मिलाप। और यदि मिलाप होगा तो दूसरे भेषमें होगा। पता ही न रहेगा कि हमारा और इसका कुछ सम्बंध था। तो ऐसे अवसर पर नम्रता आती है। और जिसका धन हरा हो उसका धन वापिस करता, बड़े विनयसे प्रेमसे वचन बोलता, क्षमायाचना करता। यह काम करके वह अब निर्विकल्प रहना चाह रहा है। किसीके प्रति कटुक व्यवहार कर लेना एक शल्य होता है। चाहे उस खोटी बातका दूसरेको पता नहीं मगर खुदको तो पता है जिसने खोटा भाव किया, चाहे वचनसे और कायसे कोई दुर्व्यवहार नहीं बना और किसीने नहीं जान पाया तो भी कुछ अपराध हुआ कि जो मनका मनमें ही रह गया तो भी यह अपने मनकी शल्य दूर करनेके लिए दूसरेसे अपना अपराध कहता है—मुझसे ऐसी गल्ती हुई है। आप बड़े सज्जन पुरुष हो, मेरेको क्षमा करो। ये सब क्रियायें क्यों करता है समाधिमरण वाला, ताकि कोई शल्य न रहे और बड़ी समाधिके साथ, समताके साथ इस देहका त्याग कर जाऊं।

मरणकालमें हुई आत्मदृष्टिधाराका प्रताप—मरण समयमें यदि आत्मदर्शनकी धारा बन जायगी तो यह अगले जीवनभर काम देगा। जैसी दृष्टि लेकर जायगा वैसी ही दृष्टिमें जमें रहकर शरीरको ग्रहण करेगा तो ऐसा ही योग बनेगा कि उसकी पात्रता रहेगी जीवनमें। सो यह व्रतीश्रावक सल्लेखना कालमें अपने आपको स्वच्छ बनाकर जा रहा है। हमने बचपनमें एक ऐसा खेल खेला था कि जैसे खिरनी पड़ेकी दो डाली ली, वे अन्दर पोली होती हैं, उनको चाकूसे कलमकी तरह बना लिया और फिर उन दोनों डंडोंको चिपका लिया। ऊपरसे कुछ मिट्टी लगा दिया। अब उसका एक डंडा घड़ेमें भरे हुए पानीमें डाल दिया। पानी अभी नहीं निकल रहा, मगर एक बार बाहर निकले हुए डंडेको मुखसे जरा चूस ले तो उससे पानी निकलना शुरु हो जाता है। धीरे-धीरे सारा घड़ा खाली हो जाता है। तो थोड़ीसी प्रक्रिया कर दी कोई पाव सेकेण्डमें फिर उसके बाद आगेकी प्रक्रिया होती रहती है। तो ऐसे ही समझो कि मरणकालमें कितना सा समय है जिस समय जीव इस शरीरको छोड़कर जा रहा। सेकेण्डका १०० वां हिस्सा भी न होगा उस समयमें चूँकि आत्मा तो आत्मा ही है, ज्ञानस्वरूप है। यह ज्ञानस्वरूप आत्मा अपने सहज ज्ञानस्वभावकी दृष्टि करता हुआ निकले यह कितने बड़े ऊंचे भवितव्यकी बात है।

मरणकालमें बाह्य पदार्थोंसे उपेक्षा होनेकी प्राकृतिकता—जिसको छोड़कर जा रहे उससे क्या मतलब है? जिनके बीच रह रहे थे उनसे क्या मतलब है? एक कोई अफसर भी जब उसका तबादला होता है तो जिस स्थानको छोड़कर जा रहा उस स्थानसे विरक्त हो जाता। जब वहांसे जा रहा तो अब यह आशा तो न रही कि इनसे अब कुछ मुझे पैसा मिलेगा। उसको एक सहज विरक्ति हो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाती है, वह है एक लौकिक ढंगकी विरक्ति पर वहां चित्त नहीं रहता, वह जहां जाना है वहां उसका चित्त लग जाता है। चाहे अभी उस जगह पहुंचा नहीं मगर दिलकी उमंग वह सब उस दूसरे क्षेत्रके लिए हो जाती है। तो ऐसे ही मरणकालमें सबकुछ छोड़कर जा रहा है न तो इस क्षेत्रसे मोह रहता, न कुटुम्बीजनोंसे मोह रहता, न यश कीर्ति आदिक किसी बातमें व्यामोह रहता। जिसके कुछ विवेक है उसकी यह चर्चा चल रही है। भैया मरण समय सबके विरक्तिकी बात कहां होती? प्रायः प्राणी तो मरण समय बहुत वेदना, मोह, मुग्धता रखते जैसे—मैंने इतना परिश्रम करके लोगोंको आंखोंमें धूल डालकर इतना वैभव इकट्ठा कर डाला है, अब यह छूटा जा रहा है मुझसे, ऐसा चिन्तन कर प्रायः प्राणियोंको बड़ा कष्ट होता है। मैंने कैसा पढ़ालिखा कर योग्य बनाकर बच्चोंको विनयशील, आज्ञाकारी बना दिया। अब इनको छोड़ कर जा रहा हूं ··· तो उसको बड़ा कष्ट होता है, मगर ये सब बेवकूफी भरी बातें हैं। जीवनमें ही बड़ा सम्हलकर रहना था वहां भी गल्ती की। अब मरण समयमें इतना व्यामोह किया जा रहा है तो यह बहुत बड़ी गल्ती है। फल इसका खोटा है, अनर्थक्रियाकारी है।

सल्लेखनाधारक श्रावकका परिजनोंको सम्बोधन—यह श्रावक क्षमायाचना करते समय कह रहा है कि मैंने आपको बड़ा दुःख उपजाया। अपराध किया, सो जो मुझसे बन गया वह तो अब उल्टा आता नहीं वापिस। अब मैं क्या करूं? आप मुझे क्षमा करें, इसके सिवाय और मैं क्या कर सकता हूं। आप मुझे सरलभावसे क्षमा कीजियेगा। यों तो जिनसे बैर विरोध है या जिन्होंने मान रखा है उनकी बात कर रहा है। यह भी सोचता है कि ऐसी क्षमा याचना, यह परस्परका सद्व्यवहार मुझे जीवनमें ही कर लेना था, पर इतने दिन तक कटुकता रही, मनमुटाव रहा, यह भी खोटी ही बात रही लेकिन जो बन गया गुजर गया उसका अब क्या किया जाय? अब तो यह ही उपाय है कि नम्र वचनोंसे क्षमा याचना करें कि दूसरेके चित्तमें भी शल्य न रहे, मैं भी निशल्य होऊं। अब स्नेहीजनोंसे वार्ता करते हैं, कुटुम्ब मित्र आदिक जिन जिनसे स्नेह किया उनसे कहता है यह सल्लेखना व्रतधारी कि तुम हमारे सम्बंधी हो, स्नेही हो, यह सब लोक व्यवहारमें चला आया था, परन्तु आत्मा आत्माका स्नेही नहीं है, यह सब पर्यायके सम्बंधकी ही बात रही। जो इस देहके पैदा करने वाले हैं वे तो मातापिता कहलाये और जो देह उत्पन्न हुआ है वह पुत्र कहलाया, जो इस देहको रमाने वाली है वह स्त्री कहलायी। सारे व्यवहार जितने स्नेह सम्बंधी हैं वे सब देहके नातेसे चले, आत्माके नाते से नहीं चले। हां त्यागीके समुदायमें देहके नातेसे व्यवहार नहीं चलता, वहां तो आत्माके नातेसे व्यवहार चलता, पर गृहस्थीमें, कुटुम्बमें रहने वाला तो देहके नातेसे ही सारे व्यवहार रखता है। सो उन स्नेही कुटुम्बीजनोंसे कह रहा है कि हमारा तुम्हारा जो सम्बंध व्यवहार था वह इस पर्यायके सम्बंधसे था सो इस विनाशीक पर्यायका इतने वर्ष तक आपसे सम्बंध रहा। यह पर्याय तो आयुके आधीन है। आयुका क्षय होते ही नियमसे यह शरीर विनशता है। सो अब इस विनाशीक पर्यायसे क्या स्नेह करना? तुम इस विनाशीक पर्यायसे स्नेह मत करो। तुम्हारा स्नेह छूटेगा तो मुझे भी निर्मोह रहनेमें मदद मिलेगी।

स्नेह व शोक दोनोंही न करनेका परिजनोंको सम्बोधन—बारबार कुटुम्बीजन सामने आकर रोवें कि तुम जा रहे हो, हम अब क्या करेंगे? यों बड़े-बड़े शब्द कहें, चिल्लायें तो कुछ तो बाधा होगी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ही, सो भली प्रकार समझा रहा यह सल्लेखना व्रत वाला कि हमारा तुम्हारा पर्यायसे ही तो सम्बंध था, जितनी देर आयु रही उतनी देर यह पर्याय रही, अब आयुका अन्तकाल है, पर्याय भी बिनसेगी, इस विनाशीक पर्यायसे तुम स्नेह मत रखो। रही यह मेरे आत्माकी बात सो प्रथम तो आत्मासे कौन स्नेह करता? थोड़ा बहुत यदि यह भी चित्तमें हो कुटुम्बीजनोंके कि मैं तो तुम्हारे आत्मासे स्नेह रखता हूं तो मेरे आत्माका कुछ बिगाड़ तो नहीं हो रहा है। आत्मा अमर है, सत् है, इसका कभी नाश नहीं होता इसलिए भी तुम्हें कोई कष्ट न मानना चाहिए। मैं आत्मा अमर हूं। यह विनशता नहीं है, देह विनशता है इससे स्नेह क्या करना? मैं आत्मा अमर हूं। जहां जाऊंगा, रहूंगा, अपने ही परिणमनसे परिणमता हूं। ऐसे ही तुम भी अपनी परिणतिसे परिणमते हो। तो आत्माका क्या स्नेह करना? करना तो वह धर्म धारा पूर्वक ही तो होगा, वहां स्नेह छोड़ ही देना चाहिए। सो हे कुटुम्बीजन, मित्रजन अब इस विनाशीक पर्यायसे स्नेह करना व्यर्थ है। जिस देहसे तुम स्नेह कर रहे थे वह देह तो अब अग्निमें भस्म हो जायगा, बिखर जायगा। जिसका संयोग हुआ है उसका वियोग होता ही है, और मेरे आत्माका जो स्वरूप है वह ज्ञानानन्दमय है, अविनाशी है, मानो यह आत्मा भी जा रहा तो यह तो संसारकी पद्धति है कि जिसका संयोग हुआ है उसका वियोग नियमसे होता है। ये जड़ पिण्ड पुद्गल मिल गए, ये मायारूप हैं तो ये बिखरते भी हैं। अब इस पर्यायको विनाशीक जानकर इस पुद्गलसे, इस देहसे स्नेह छोड़ो और यदि हो सके तो मेरे आत्माके उपयोग करनेमें उद्यमी होइये, निर्मोहताकी चर्चा करिये, आत्माके स्वरूपकी वार्ता करिये। अन्य बात करना व्यर्थ है। ये स्नेह वाले वचन योग्य नहीं हैं, जैसे मेरे ज्ञानदर्शन स्वभावी आत्माका रागद्वेष भावोंसे घात न हो ऐसा यत्न करिये। जो कुटुम्बीजन मरणहार व्यक्तिसे मोह ममताकी बात करते हैं तो मानो जीवनभर भी उसे रगड़ा और मरते समय भी उसे रगड़ रहे कि तुम जावो दुर्गतिमें। तो कुटुम्बीजनोंका भी यह काम होता है कि वे इस पर्यायसे स्नेह छोड़ें और जिसमें इस भगवान आत्माका घात न हो ऐसा ही पौरुष करें।

दर्शनज्ञान सामान्यात्मक भगवान आत्माकी दृष्टि होनेमें मददगार वातावरण देनेका परिजनोंको सम्बोधन—सल्लेखना व्रत ग्रहण करने वाला यही व्रती श्रावक अपने घरके कुटुम्बियोंसे कह रहा है कि जो यह देह है, जिसको हम आप लोग देखकर व्यवहार करते हैं यह तो विनाशीक है, पर्यायमात्रसे ही आप लोगोंका सम्बंध था, अब यह नष्ट होने वाली है, इसका स्नेह छोड़ें और जो मैं आत्मा हूं वह अदृश्य हूं, उससे कोई व्यवहार करता ही नहीं सो मैं अमर हूं, इस कारण कुछ सोच भी नहीं करता और जैसे ही मेरे दर्शन ज्ञानादिककी उज्ज्वलता बने वैसा ही आप लोग व्यवहार रखें जिससे कि भविष्यमें शान्त सुखी रह सकूँ। यह पर्याय तो अनन्त बार ग्रहणकी है और छोड़ी है, पर मेरा दर्शन, ज्ञान, चारित्र उल्टा होनेसे चारों गतियोंमें मैंने भ्रमण किया और उस ही भ्रमणके सिलसिलेमें आज मनुष्यपर्याय पायी, सो कहां तो मेरा सर्वज्ञातास्वरूप, जिस ज्ञानका ऐसा सामर्थ्य कि त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ ज्ञानमें झलके, परमआनन्दमयस्वरूप और कहां आज ऐसी दशा बन रही है। जब निगोदमें थे, एकेन्द्रिय पर्यायमें थे तो अक्षरके अनन्तवें भाग ज्ञान रहा और कर्मोदयवश उसके परिपूर्ण ज्ञानदर्शनये सब कुछ बिगड़ गए, नष्ट हो गए, कितने ही बार पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति हुए, कीड़ा मकोड़ा

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकलत्रय हुए। यह सब मिथ्यादर्शन, मिथ्या ज्ञान, मिथ्याचारित्रका प्रभाव है। यदि इस मरणमहोत्सवके समय भी न चेत पाये, कुमरण हुआ तो जैसी दुर्गतियोंमें अब तक घूमते आये वैसा ही घूमना पड़ेगा। सो हे कुटुम्बीजन मुझपर कृपा कर स्नेह मत लावो, शोक भी मतलावो और इतने समय तक जो सम्बंध रहा, जो मुझसे सेवा बनी उस सेवाके फलमें मैं चाहता हूं कि मेरा मरण सुमरण हो। अपने कारणसमयसार भगवन्त निजपरमात्मद्रव्यकी सुध लिए हुए मैं इस शरीरको छोड़कर जाऊंगा, तो निकट कालमें ही कर्मकलंक हट जायेंगे, निर्वाण मिलेगा। सो एक यह अवसर मिला है, ज्ञानावरणका क्षयोपशम मिला है, जैन शासन प्राप्त किया है, स्वपर भेदविज्ञान भी हुआ है, तो इतनी विशेषता पा लेने पर मुझे और प्रगति करने दीजिए। हे कुटुम्बीजन अब मुझ से स्नेह करें तो ऐसा करें कि मेरा आत्मा रागद्वेषरहित हो जाय। दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप इन चारकी आराधना सहित होवे तो इस ही में आपका सच्चा स्नेह है। बारबार मैं मरूं, जन्मूँ ऐसी व्याथा मेरी कट जाय और इसका पूर्ण वातावरण आपसे मिले तो यह आपका बड़ा स्नेह कहलायगा। बालबाल मरण तो अनन्त बार हुआ अज्ञान अवस्थामें, पर अब तक पंडित मरण नहीं प्राप्त किया। बालपंडित मरण नहीं पाया, सो हे सज्जनो, ऐसे ही वचन सुनाओ, ऐसी ही धर्मचर्चा करो और जो जो समय पर उपयुक्त हो वह व्यवहार करो ताकि मेरे दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी आराधना बनी रहे। समाधिमरण एक ऐसा उच्चपवित्र कार्य है कि जिसके प्रतापसे यह जीव संसारसमुद्रमें फिर नहीं डूबता। सो स्नेह, शोक, बैर आदिक छोड़कर मुझसे सद्व्यवहार करो और मैं भी सबसे स्नेह बैर आदिक छोड़ रहा हूं और समस्त परिग्रहोंको भी छोड़ रहा हूं। किसी भी परिग्रहसे मुझे लगाव नहीं। मैं अपने शुद्ध अंतस्तत्त्वकी दृष्टिमें ही लगूं, यह ही मेरी भावना है। यह व्रती श्रावक समाधिमरणके अवसर पर और क्या करता है सो बतला रहे हैं।

आलोच्य सर्वमेनः कृतकारितमनुमतं च निर्व्याजम्।
आरोपयेन्महाव्रतमामरणस्थायि निश्शेषम्॥ १२५॥

कृत-कारित-अनुमोदित, सब पाप आलोचना कर निश्छल।
मरण पर्यन्त समस्त महाव्रत आरोपै स्थिर हो॥

सल्लेखनाधारीका गुरुसेअपने कृत कारित अनुमत पापोंका प्रकाशन व निवेदन—जो जीवनमें पाप किया अथवा कराया अथवा पाप करते हुए की अनुमोदनाकी उन समस्त पापोंका आलोचना प्रकाशन करके मरणपर्यन्त अथवा कहो आजीवन महाव्रतका आरोपण करे जिसमें सर्व परिग्रहोंका त्याग बने। यह व्रती श्रावक गुरुजनोंसे कपटरहित अपने पापकी आलोचना करता है। यदि मरण समय पापकी सही आलोचना नहीं कर पाता तो इसके मायने यह है कि उसको इस देहसे ममता है। कहीं लोग यह न जान जायें कि इसने ऐसा पाप किया। लोग कह देते हैं देह को, ज्ञानमात्र अमूर्त आत्माको कोई लोग नहीं जानते। फिर लोगोंका संकोच क्या? संकोच होता है तो उसके सामने यह है कि उसकी अभी देहमें आत्मबुद्धि लगी है, और जहां देहमें आत्मबुद्धि हो, पर्यायबुद्धि हो वहां मिथ्यात्व

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। समाधिमरण कैसे हो? तो सन्यासमरणमें प्रवृत्ति करने वाला यह व्रती श्रावक अपने सर्वपापोंको निष्कपट ज्योंके त्यों गुरुसे कहता है। यों सबसे पापोंको प्रकट करनेमें इसका तो कोई बिगाड़ नहीं है मगर धर्म तीर्थ बिगड़ जाता है, लोगोंकी श्रद्धा हट जायगी। इस धर्मके मानने वाले ऐसे ऐसे पाप करते हैं सो गुरुजनोंसे वह अपने पापकी आलोचना करता है। सबसे आलोचना करना बताया इसमें भी इस ज्ञानीको संकोच नहीं है, क्योंकि देहसे निराले ज्ञानमात्र अमूर्त आत्माकी इसकी दृष्टि है। इसकी निन्दा क्या? देहको देखकर लोग सोचते हैं कि यह व्यक्ति है, तो निन्दा है सो देहकी। सो पौद्‌गलिककी निन्दासे किसको नुकसान? जो मैं अमूर्त आत्मा हूं उसको कोई जानता ही नहीं, निन्दा कोई क्या करेगा? और कोई जान जाय तो वह निन्दाका विषय नहीं रहता। सो इस ज्ञानीको मरणकालमें अपने पापोंको कहनेमें रंच भी संकोच नहीं है फिर भी धर्मप्रेमके कारण, शास्त्राज्ञाके कारण वह यहां वहां पापोंका प्रकाशन नहीं करता फिरता, धर्मतीर्थकी रक्षा करता है और अपने गुरुजनोंसे आलोचना करता है।

सल्लेखनाधारीका गुणरूप निश्छल स्वापराधका निवेदन—जैसे बालक अपने पापकी आलोचना करनेमें रंच भी संकोच नहीं करते। जो किया हो उसे मुखसे कह देंगे क्योंकि वे सरल हृदय होते हैं, और जो सरल होता है उसमें धर्मकी वासना होती है। कपटीमें, मायाचारी पुरुषोमें धर्मकी बात नहीं टिक सकती। इसीलिए विवेकीजनोंको, त्यागियोंको, साधुवोंको बताया है कि वे बालकोंकी तरह सरल और निर्विकार होते हैं। बालकोंकी सरलताकी एक घटना सुनिये—कोई बाबूजी किसी सेठके कर्जदार थे। एक दिन बाबूजीने देखा कि सेठआ रहा है तगादेके लिए तो झट अपने बेटेसे कह दिया कि देखो बेटे वह सेठ आ रहा है। तुम जावो बाहर चबूतरे पर खेलो, जब वह द्वार पर आवे और पूछे कि तुम्हारे बाबूजी कहां हैं। तो कह देना कि वह घर पर नहीं हैं, बस लड़का द्वारपर पहुंच कर खेलने लगा। सेठने आकर पूछा उस लड़केसे कि तुम्हारे बाबूजी कहां हैं? तो लड़केने वही उत्तर दिया जो उसके पिताने सिखा दिया था—बाबूजी घर पर नहीं है।फिर पूछा सेठने—कहां गए? तो वह लड़का बोला—ठहरो यह भी हम बाबूजीसे पूछकर बताते हैं? तो इतने सरल होते हैं बालक लोग। बालकोंको खेलते हुए देखकर लोग बोलते कि बचपन बड़ा अच्छा होता है, पर खुद भी तो कभी बालक थे, तबकी याद करें तो लगेगा कि बचपन बहुत अच्छा होता है। पढ़ना, लिखना, खेलना, किसी बातकी चिन्ता नहीं, पर ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती गई त्यों-त्यों विकार बढ़ते गए। ज्यों-ज्यों विकार बढ़ते गए त्यों-त्यों परेशानी बढ़ती गई। तो ये व्रती श्रावक गुरुजनोंसे अपनी कृतकारित अनुमोदित समस्त पापोंका निवेदन करता है और जो प्रायश्चित प्रतिक्रमण दें उनको ग्रहण करता है।

व्रती श्रावककी महाव्रत सहित सल्लेखनाकी भावना—यह व्रती श्रावक यदि समागम योग्य समझे तो वह महाव्रत धारण करता है। कैसा समागम चाहिए कि जिससे महाव्रत धारण करना सफल हो? वीतराग निर्दोष गुरुवोंका संग मिले याने जो समताप्रिय हैं, जिनका किसी जीवपर रागविरोध नहीं है। जो संसार, शरीर, भोगोंसे विरक्त है, सहज आत्मस्वरूपकी धुनमें ही रहा करते हैं ऐसे गुरुवोंका संयोग प्राप्त हो। दूसरी बात-परीषह आदिक सहन करनेमें समर्थ हों। चौथी बात—स्वयंमें धीरता, गम्भीरता रह सके, ऐसा अपना विचार हो, ऐसा अभ्यास हो, ये सारी बातें निजसहज परमात्मद्रव्यकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आराधनाके प्रतापसे सहज और सुगम हो जाती हैं। बताओ मोह छोड़ना कठिन है कि सरल? जिनको आत्माकी सुधकी योग्यता ही नहीं उनके लिए कठिन है, कठिन ही क्या, उस काल असम्भव है, और जिन्होंने अपने सहजस्वरूपका अनुभव किया, निर्णय किया कि यह मैं आत्मतत्त्व हूं तो उनके लिए सुगम है, सरल है, सहज है। मोहरहित होना यह तो सरल काम है, पर मोह रागद्वेष न करना यह कठिन काम है। निर्मोह होना कितना सरल है कि उसमें किसी बाहरी पदार्थकी अपेक्षा नहीं, किसीकी आशा नहीं, स्वयं स्वाधीन है, और रागद्वेषादिकका करना कठिन क्यों है कि इसमें परकी अपेक्षा है, दूसरे भी इसमें खुश रहें, दूसरोंकी भी कृपा रहे, कर्मका उदय अनुकूल हो, यों उसमें कितनी ही अपेक्षायें चाहिए, तब यह जीव रागद्वेष कर सकता है। इतना सरल सुगम कार्य है निर्मोह होना और आत्मतत्त्वमें लीन होना, पर जिनका ध्येय बन गया आत्मस्वरूपके दर्शनका उनके लिए सब सुगम है, और जिनके अज्ञान है, बाह्य विषयोंमें जिनके आसक्ति है उनके लिए यह कल्याणका मार्ग कठिन है। ये व्रती श्रावक सल्लेखनाके समय ध्यान धर रहा है, महाव्रत धारण करनेके लिए चिन्तन कर रहा है कि मेरेको निर्दोष गुरुका संयोग हो, मेरे रागादिक कषाय घट जायें, परीषह आदिक सहन करनेकी सामर्थ्य हो, धीरता गम्भीरता आदिक गुण प्रकट हों, साथ ही निर्ग्रन्थ वीतराग गुरु मेरा निर्वाह करने को समर्थ हों। देश कालका शुद्ध सुयोग हो ताकि मैं महाव्रत धारण करूं। वह देखता है कि यदि योग्य समागम है तो वह महाव्रत धारण करता है और यदि योग्य समागम न पाया तो भी परिग्रहोंका त्यागकर अपने आत्मप्रभुका ध्यान धरकर, अपने स्वरूपका ध्यान रखकर अरहंतके स्मरण सहित आलोचना करता और अपनी शक्तिमाफिक परिग्रहका त्यागकर, पंचपापका त्यागकर घरमें ही रहते हुए महाव्रती तुल्य साधना करता है।

सल्लेखनामें विवेकीका व्याधियोंके प्रसंगमें भी कायरता छोड़कर धीर वीर रहना—मरण काल एक कठिन काल है। शारीरिक वेदनायें रोगादिक बढ़ जाते हैं, कफ बढ़ गया, खांसी हो गई, बुखार बढ़ा है, यों कितने ही रोग इस मरणकालमें आते हैं, पर एक बात विलक्षण है कि जब मरणकाल अत्यन्त निकट हो जाता है, जिसे कहते हैं कि यह तो बस दो चार मिनटका ही महिमान है तो उस समय पता नहीं ये सब रोग कहां चले जाते? वह वेदना नहीं रहती। बहुतोंको देखा होगा मरण समयमें कि बड़े कठिन रोगसे ग्रस्त है और उन अन्तिम दो चार मिनटोंमें रोग उनके नहीं रहता। तो यह भी एक अच्छा अवसर सा है, और फिर यह ज्ञानी पुरुष इतना ज्ञानबली है कि रोगादिक वेदनायें भी आती हैं तो कायरता छोड़कर बड़े धैर्यसे उन सबको समतापूर्वक सहता है। जहां भेद-विज्ञान प्रबल है और अपने आत्मस्वरूपकी ओर अभिमुखता है वहां वेदनायें सहलेना बहुत आसान होता है। यहां भी तो देखा जाता है कि करीब-करीब एकसी ही बीमारी तो है १० व्यक्तियोंको, उनमें एक व्यक्ति तो चिल्लाता है बुरी तरह, कोई मामूली कराहता है कोई शान्त पड़ा रहता है, वेदनायें करीब एक सी ही हैं, रोग एक सा है, ऐसा भी यहां अन्तर देखा जाता है, वह अन्तर किसने कर दिया? उन आत्मावोंके स्वयंके ज्ञानने अन्तर कर दिया, देहमें ही दृष्टि जिसकी बनी है, देहको ही जो आत्मस्वरूप मानता है उसकी वेदनायें अधिक हैं और देहसे निराला अपनी अमूर्त चेतनाको आत्मारूप मानता है उसे वेदनायें कम हैं अथवा नहीं हैं। जैसे यहां कोई किसी दूसरेके लड़केको सताये या कुछ भी दूसरेका नुकसान होता हो तो उसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

देखकर भीतरमें विह्वलता न हो। भले ही थोड़ा कुछ सम्बंधसे कुछ सज्जनताके नातेसे थोड़ा सोचते हैं, खेद करते हैं मगर आन्तरिक विह्वलता तो नहीं होती, वह जानता है कि जो हो रहा वह दूसरेका हो रहा, तो ऐसे ही यहांकी बात समझिये। शरीरमें कोई रोगादिक बने, व्याधियां बढ़ें तो वह देखता है कि यह दूसरेका हो रहा है देहमें ऐसा परिणमन हो रहा है। जिसने अपनेको अत्यन्त निराला अनुभव कर लिया उसको ये वेदनायें नहीं सतातीं। तो कायरपना छोड़कर यह ज्ञानी पुरुष सल्लेखनाके कालमें बड़ी-बड़ी व्याधियोंको धैर्यपूर्वक सहता है।

आई हुई व्याधि वेदना उपसर्ग आदिमें भी सल्लेखनाधारीके आत्मप्रसन्नता—भले ही कुछ थोड़ी वेदना है, मगर न यह कराहता है, न लोगोंको अपने शब्दोंसे प्रकट करता है कि मेरेको इतनी कठिन वेदना है। क्योंकि स्वयं ही उसमें इतना ज्ञानबल हुआ है कि प्रकट करनेके लायक उसके पास राग नहीं है। यह भी समझता है विवेकी कि पूर्व कर्म खुदने ही तो कमाया है, उनका उदयकाल आ रहा है तो यह तो मेरे लिए भली बात है। मैं तो इन कर्मोंके कर्जेसे आज मुक्त हो रहा हूं। किसीको यदि दुःख होता है तो वह पापकर्मके निकलनेसे होता है, किसीको यदि सम्पदा सुख सामग्री मिलती है तो वह पुण्यकर्मके निकलनेसे मिलती है। कहनेका रिवाज ऐसा है कि इसके बड़ा पापका उदय है जो इतना कष्ट पा रहा, इसके बहुत पुण्य है जो इसको सुख सम्पदायें प्राप्त हो रही हैं, पर वास्तविकता क्या है? उसे यों कहना चाहिये कि इसके पापकर्म निकल रहे हैं अब या जिनको सुख सम्पदा मिली है उनका पुण्य कर्म अब निकल रहा है। निकलना और उदय होना दोनोंका एक ही अर्थ है। जैसे सूर्यका उदय होना और सूर्यका निकलना इन दोनोंका मतलब एक है। ऐसे ही कर्मका उदय होना और कर्मका निकलना इन दोनोंका भी मतलब एक है। होता यह है कि पुण्यकर्मका भण्डार बहुत पड़ा हुआ है सो कुछ निकला, बादमें और निकला, बस निकलनेकी धारा बनी रहती है कुछ काल तक सो वह वैभव कुछ काल तक टिका हुआ दिखता है, ऐसे ही पापकर्मका भी भण्डार पड़ा है सो अमुक पाप निकला जिससे कष्ट हो रहा, तो पापके निकलनेकी धारा बनी हुई हैं, सो उसका कष्ट देर तक रहा करता है। तो यदि कोई विपदा आये, रोग आये तो यह तो भला है कि जो पापकर्म कमाया था वे पापकर्म अब मुझसे निकलकर विदा हो रहें। कर्तव्य यह है कि उस कालमें उन विप्रदावोंमें घबड़ायें नहीं, और यह ज्ञान बनाये रहें कि मेरेपर क्या विपदा है? वह बाह्य पदार्थोंका परिणमन है, हो रहा है। देहका अमुक परिणमन है जो भी हो रहा है, मेरेमें कहां विपदा है? अमूर्त ज्ञानमात्र आत्मामें कहांसे विपदा आ सकती? ऐसा अपनेको निरापद निरखें, वेदनायें समतासे फिर सुगमतया सहली,जाती हैं। सल्लेखनाका अर्थ ही यह है कि विषयकषायके भावोंको भले प्रकार कृश कर देना और अपनेको विषयरहित कषायरहित ज्ञाताद्रष्टामात्र निरखना। जो इस चैतन्यभाव रूप अमृतका पान करता है वह अमर ही है। उसका मरण कहां है? सल्लेखना व्रतके समय यह व्रती श्रावक अपने ज्ञानबल द्वारा समस्त आकुलताओंको दूर कर देता है।

सल्लेखना धारण करनेवालेका अपनी निःशल्यताके लिये सर्वव्यवस्था विभाजनकी पूर्णताका प्रक्रम—सल्लेखना धारण करने वाला महाभाग पुरुष उससे पहले घरकी ऐसी व्यवस्था बना

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

देता है कि जिससे बीचमें कभी कोई शल्य न आये। वह व्यवस्था किस तरह की है? जैसे किसीने कोई धन हर लिया हो छलसे, झूठसे, जमीन, मकान रत्न आदिक, तो पहले उसको बुलाकर अपने अपराधकी क्षमा कराकर उनका धन, मकान, जमीन आदिक जो भी किसी प्रकार हर लिया है वह वापिस देता है, फिर जो कुछ धन आदिक परिग्रह है उसके विभाग कर देता है, लड़कोंको देता हे, लड़की, बहिन, बुआ आदिक जो भी हैं उनको देता है, दीन दुःखी, अनाथ, विधवा या जो जो भी इसके आश्रयभूत हैं उन्हें जो देना है सो देकर सब विभाग बनाकर, अपना उसमें कुछ भी न समझकर अपने लिए कुछ न रखकर समस्त परिग्रहोंको त्यागकर सबमें ममताको छोड़ देता है। लोग जिनको कुछ देते हैं उनसे कुछ आशा रखते कि ये हमको भला मानें, अच्छा कहें, प्रशंसा करें, इस तरह कुछ उनसे अपेक्षा रखता है, पर ऐसी अपेक्षा सल्लेखना वालेके नहीं है। उसने तो विभाग किया सो अपनेको निशल्य रखनेके लिए, और यह भी शल्य न रहे कि बादमें कोई झगड़ा उठे। किसी प्रकारकी शल्य न रहे एतदर्थ यह सारा विभाग किया है, इसके पश्चात् सबमें ममताको छोड़ दिया, शरीरके संस्कारको भी त्यागा, देहकी सेवाको भी त्यागा। अंतमें केवल पंचपरमेष्ठियोंका स्मरण और आत्मस्वरूपका स्मरण ये दो ही उसके आधार रहते हैं।

प्रभुगुणस्मरणकी भावना—पूजा करने वाला, दर्शन भक्ति करने वाला यह प्रार्थना करता है, रोज, जैसा कि भक्ति पाठमें लिखा है—

आबाल्याज्जिनदेव देव भवतः श्रीपादयोः सेवाया।
सेवासक्तविनयेकल्पलतया कालोऽद्य यावद्गतः॥
त्वां तस्याः फलमर्थये पद्धुना प्राणप्रयाणक्षणे।
त्वन्नामप्रतिबद्धवर्णपठने कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम॥

हे प्रभु, बचपनसे लेकर आपकी चरणसेवामें मैंने इतने वर्ष व्यतीत कर डाला, ऐसी आज तक जो मैंने भक्ति सेवा आदिक किया है सो उसका फल मैं यह चाहता हूं कि जब मेरे प्राणका प्रयाण हो, मरणकाल हो उस मरणके समयमें आपके नामके दो अक्षर हैं जिन अक्षरोंके बोलनेमें मेरा कंठ न रुंध जाय, अर्थात् मैं आपके नामके अक्षर बोलता हुआ और उसका चिन्तन करता हुआ मरण करूं। केवल यही चाहते हैं जीवनभर प्रभुकी भक्तिके फलमें। यह तो बड़ा अज्ञान है जो किन्हीं लोगोंके चित्तमें आता है दर्शन करके, पूजा करके, यात्रा करके कि मेरा अमुक कार्य सिद्ध हो। पुत्रादिककी प्राप्ति हो, धन आदिक मिलें, कुछ भी वाञ्छा रखकर धर्मकार्य करना अज्ञानमें ही हुआ करता है। और यों समझिये कि इस प्रकारकी इच्छा कर लेनेसे मेरा आने वाला पुण्य घट गया, लाभ न हुआ, तिसपर भी पूर्व पुण्य मानों महान था और धर्मके एवजमें सांसारिक चीजें मांग ली तो मिलना बहुत था सो अब कम मिला। लेकिन यह अज्ञानी उस कम मिलेको ही समझता कि मुझे भगवानने दिया है। निर्वाञ्छ होकर प्रभुकी भक्ति करनेसे मन चाहा स्वयं मिलता है। पर धर्मधारणके एवजमें चाहनेसे पुण्य घटता है और कुछ पापरस ही आता है। क्योंकि मूलमें मिथ्यात्व पड़ा हुआ है। जहां मोह और मिथ्यात्व बसा हुआ है वहां सातिशय पुण्यकी कोई आशा रखे तो वह व्यर्थ है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्व परिजन सम्पदामें ममत्व त्यागकर निजदर्शन ज्ञानस्वभावमें उपयुक्त होनेकी भावना—सल्लेखना व्रतधारी आत्मा कुटुम्बीजन, मित्रजन, चेतन अचेतन समस्त परिग्रहोंसे ममताको त्याग देता है। वह जान रहा कि अब यह मरणकाल है। इस पर्यायका सम्बंध कितने समयका है और फिर इन बाह्य वस्तुवोंसे देहका ही तो नाता था, उसकी क्यों ममता हो? अथवा देह ही छूट रहा फिर ममताका अर्थ क्या? हमारे आत्माका सम्बंध तो अपने स्वभावरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे है। यह ही मेरा निजी स्वरूप है, सो इसमें ही मेरा सम्बंध बढ़े और जो देह है, हाड़ मांस मज्जा खून आदिकसे रचा है यह तो कृतघ्न है। इस देहकी इतनी सेवायेंकी मगर यह तो रोग व्याधि कष्ट आदिकका उपजाने वाला बन रहा है। यह देह जड़ है, यह मेरा कुछ नहीं है, मैं इसका कुछ नहीं हूं। देह विनाशीक है, मैं अविनाशी हूं, अत्यन्त विलक्षणता तो है फिर सम्बंध किस बातका? जो अंत तक ममता रही आयी वह सब मेरे अज्ञानके कारण रही आयी और उस अज्ञानमें ही अशुभ कर्मका बंध किया। अब तो मेरी यह ही अभिलाषा है कि यह देह मुझे कभी मिले ही नहीं। जैसा मैं अपने आपके सहज स्वरूपमें हूं विविक्त, सर्वसे निराला ज्ञानमात्र ऐसा ही मैं सर्वप्रकारसे हो जाऊं अन्य वाञ्छा नहीं है क्योंकि देहसे लाभ नहीं है। हानि ही है। इस देहकी ममतासे जनममरणकी धारा बनती है। आत्माको जो अनन्तज्ञान अनन्तदर्शन आदिक विकास है वह विकास रुक जाता है।

समस्त दुःखोंके मूल देहसे ममत्व करनेकी व्यर्थता—जितने भी संसारमें दुःख हैं वे सब इस देहके कारण ही हैं। जो मेरे दुःखका कारण हो उससे ममता किस बात की? आप कोई भी दुःख का नाम लेते जाइये, क्या-क्या दुःख हैं। सबमें यह मिलता जायगा कि देहके सम्बंधसे ही दुःख हैं, अन्यथा दुःख कुछ नहीं। किसी भी प्रकारके दुःखका नाम लो—धन नहीं रहा, यश मिट गया, निन्दा हो रही हो, कुटुम्बका कोई गुजर गया हो, व्याधियां हुई हों, किसी प्रकारका भी दुःख हो, सबका आधार है देहका सम्बंध तो जिस देहके संयोगके कारण कष्ट उठाना पड़ रहा है उस देहसे क्या ममता? और भी जितनी आपत्तियां आती हैं क्रोध, मान, माया, लोभ, कामवासना विकार आदि अनेक बातें जो भी विपत्तिरूप होती हैं उन सबका कारण है देहका सम्बंध। ऐसे देहसे क्या राग रखना। सो उस देहसे भी कुटुम्बीजनोंसे भी ममता त्यागकर अब अपने निजस्वभावमें मग्न होता हूं। सल्लेखना व्रतधारीका केवल एक ही काम है भीतर, इसीको कहते हैं अन्तः क्रिया, (भीतरी काम)। यह सल्लेखना ग्रहण करने वाला व्रती श्रावक और क्या करता है सो बताते हैं।

शोकं भयमवसादं क्लेदं कालुष्यमरतिमपि हित्वा।
सत्त्वोत्साहमुदीर्य च मनः प्रसाद्यं श्रुतैरमृतैः॥ १२६॥

शोक और भय विषाद स्नेह कलुषता अरतिभी तजकर।
सत्त्वोत्साह प्रगटकर, श्रुतअमृत से करै मनतुष्ट॥

शोक विषाद त्यागकर प्रभुवचन श्रवणसे आनन्दरसका पान—सल्लेखनाके अवसरपर शोक,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भय, विषाद, स्नेह, कलुषता, अरति आदिक कुभावोंको त्याग करके और अपने आपके बलको प्रकट करके उत्साह प्रकट करके अमृतमय जिनवाणीके वचनोंके श्रवणसे अपने मनको शान्तचित्त करके आत्माकी साधना करें। शोक क्यों उत्पन्न होता? उस शोकका कारण है अज्ञान। मैं आत्मा एक हूं, इस आत्माका द्वितीय कुछ भी नहीं है। इस मुझमें किसीपरका प्रवेश नहीं है। सर्व बाह्य बाह्य बातें हैं, लेकिन अनादिकालसे इस जीवके बाह्य बातोंमें आत्मबुद्धि रही। जब जो पर्याय प्राप्त किया उस पर्यायमें आत्मबुद्धि लगी है। देहको आत्मा माना। देह मिलनेको जन्म माना, देहके वियोगको मरण माना। जब यह देखते हैं कि मेरा देह मिट रहा या धनपुत्र मित्र स्त्रीका वियोग हो रहा तो इसको बड़ा कष्ट उत्पन्न होता है ऐसा शोक अज्ञानीके होता, सम्यग्दृष्टिके शोक नहीं होता। एक वह भीतरमें प्रकाश पाल लिया जाय जिस प्रकाशके पानेसे सारे संकट एक साथ समाप्त हो जाते हैं। संकट क्या है? परपदार्थोंके बारेमें अपनी कल्पना इष्ट अनिष्ट बुद्धि बनाना, बस यह ही कष्ट है, दूसरा कोई कष्ट नहीं। बाहरी चीजें बाहर हैं, वे सब अपने आपमें पूरी हैं, उनसे कष्ट क्या निकलेगा? उनमें कष्ट भरा ही नहीं है। पर पदार्थोंके विषयमें ममता विकल्प इष्ट अनिष्ट भावना होना यह कष्ट है। और देखो सभी मनुष्य अपने-अपनेमें ख्याल बनाये हुए हैं कि यह मेरा घर है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरा सबकुछ है, और इनके लिए ही मेरा सबकुछ है, तन, मन, धन, वचन, प्राण। सब अपने-अपने चित्तमें ऐसा एक अध्यवसान बनाये बैठे हुए हैं। बाकी सारी चीजें, दूसरेकी सब बातें उसे गैर लगतीं, न कुछ लगतीं, मतलब नहीं। उन पदार्थोंका बिगाड़ हो, नाश हो, कुछ भी हो, उससे हममें कुछ भी प्रभाव नहीं आता।

ममता करनेकी कुबुद्धिमें आत्मघात—जिनको अपना मान रखा है उनको ही अपना सर्वस्व माननेकी आस्था है, तो कितनी बड़ी कुबुद्धि है, और कितनी बड़ी विपत्ति है। आज जिसको गैर माना जा रहा, मरकर उसकीके लड़का बन गया तो अब वह अपना बन जायगा और पूर्वभवका जो सब कुछ है कोई घटना बनी वह गैर बन जायगा, दुश्मन हो जायगा। कैसा पागलपन है कि आज जिस पर्यायमें आये हैं उस पर्यायके सम्बंधियोंमें तो ममता है बाकी सब जीवोंमें उपेक्षा बुद्धि है। ऐसी यदि आस्था है तो यह विपत्ति है, उन्मत्तता है, मदमत्तता है, अपनेको सम्हालना चाहिए और कुटुम्बीजनोंसे ममता हटे, मिथ्यात्व हटे और सब जीवोंमें इष्ट अनुराग जगे, मैत्रीभाव बने तो इसमें आत्माकी रक्षा है। और जो करते आये अनादिसे उन्हीं दो चार जीवोंमें ममता बनाये रहे तो यह विपत्ति है, अधर्म है, पाप है। यह बात चित्तमें अगर पूरी पड़ी हुई है तो भगवानकी पूजा और विनतीका अर्थ क्या रहा? जैसे कोई कहे कि पंचोंकी आज्ञा सिर माथे मगर पनाला यहीं निकलेगा, तो फिर सिरमाथेका अर्थ क्या रहा? अपनी आदतमें फर्क नहीं डालते, मोहमें, ममत्वमें, दूसरोंसे घृणामें, विरोधमें, दो धारा बनानेमें उसमें कुछ फर्क न डाला, भीतरमें समझ भी न बनाया तो धर्मके नामपर इतनी बड़ी बात करनेका क्या अर्थ रहा? अर्थ इतना ही रहा कि जैसे अनेक शौक लगते हैं पुरुषोंको ऐसे ही एक पूजन दर्शनका भी शौक लग गया, इसका एक ही अर्थ रहा। यदि भीतरमें कुछ अपने परिणाम सुधारना चाहते ही नहीं हैं, न तत्त्वविचार चाहते हैं तो थोड़ा पुण्य बनेगा, सांसारिक चीजें मिलेंगी, रुलना वहीका वहीं बना रहेगा।

जीवनमें सद्भावना बनाये रहनेसे सल्लेखनाकी सुगमता—धर्मसाधनाकी बात करना चाहिए

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

घरमें रहकर जिन्दगीमें, मरते समयकी आशा न बनावें कि मरते समय हम सब कुछ छोड़ देंगे, अभी तो बहुत जीवन पड़ा है, ये काम तो तबके करनेके हैं, ऐसा मरण पर निर्भर न करें। अपने ही इस जीवनमें यह तपश्चरण करें कि सर्वजीव एक समान हैं। घरमें गुजारा करना है इसलिए उस गुजारेके नातेसे सही व्यवस्थाके हेतु राग करना होता है। व्यवस्था करना है, प्रबंध करना है सो यह तो है गृहस्थधर्ममें कर्तव्य, मगर उनको ही अपना सर्वस्वमानकर वही वही चित्तपर चढ़ा है, बाकी लोगोंका कुछ महत्त्व नहीं आंका जाता है, यह है विपत्ति। शोकका कारण क्या है? मिथ्यात्व, अज्ञान, बाह्यपदार्थोंमें लगाव। जिसको अनिष्ट माना उसका संयोग होनेपर यह शोक करता है, जिसको इष्ट माना उसका वियोग होनेपर यह शोक मानता है।

क्लेशमूल शरीरसे प्रीति न करनेमें श्रेयोमार्गका लाभ—हे आत्मन् ! पर्यायें तो अनन्तानन्त ग्रहण हुई हैं और छूटी हैं और पर्याय, यह देह क्लेशोंका स्थान है। इस देहके कारण रोज-रोज ही दुःख भोगना पड़ता है। भूख लगती, कुछ क्षुधाकी वेदना रोज-रोज सहनी पड़ती। तो भले ही भोजन साधक है, खा लिया पेट भर गया, मगर खूब ठूँस लिया तो फिर पेटदर्दके मारे पड़ गए, आखिर इस देहको कष्ट ही कष्ट तो हुआ, शीत, उष्ण, प्यास, भय आदिक सभीके उत्पन्न होनेका साधन यह देह है। जिस देहसे तुझे इतनी तीव्र ममता हुई है सो तत्काल भी कष्ट पाया और अनन्तज्ञानादिक गुणोंका विकास रुक गया, सो अपवित्रता भी पायी। यह देह समस्त पापोंका उत्पन्न करने वाला है, और कुछ समय बाद लोगोंके द्वारा जला दिया जायगा ऐसे इस देहको दुःखमूल निरखकर प्रीति करना तो छोड़ दो। पर्यायमें आत्मबुद्धि होना कष्टका कारण है। इस देहको तो दुष्ट संगकी तरह छोड़ देना चाहिए। जैसे—दुष्टका संग मिल जाय तो उसको छोड़नेकी ही ठानते हैं ऐसे ही देहका संयोग मिला है, संग मिला है तो इससे सदाके लिए छुटकारा पानेकी ही मनमें ठानो। इस देहसे सदाके लिए छुटकारा होनेका उपाय अपने सहजस्वरूपको ही आत्मसर्वस्व मानना यह ही मात्र उपाय है। दुष्टोंसे कोई प्रीति करे तो वे तो बढ़ेंगे, आयेंगे, रहेंगे, ऐसे ही देहसे जो प्रीति करे तो उसको तो देह आयेंगे, बारबार मिलते रहेंगे यह ही होगा इस देहकी प्रीतिमें।

पौद्गलिक पर्याय समागममें हर्ष विषाद कर सहजात्मस्वरूपकी उपासनाका कर्तव्य—गृहस्थजनोंको सोचना चाहिए कि वे अपने वर्तमान साधन समागममें मौज न मानें। उन मौजका परिणाम अच्छा नहीं है। हो रहा है, व्यवस्था बनाइये, राग भी करना पड़ता तो करिये मगर ममत्व न रखिये। इस संसार समागमके मिलते रहनेका उपाय न बनाइये। ध्यान रहना चाहिए अन्तः अपने विविक्त स्वरूपका, सबसे निराला ज्ञानमात्र। मेरी जिम्मेदारी मेरे पर ही है, दूसरों पर नहीं है, दूसरे तो मैं अच्छा रहूं तो वे मेरे सुकार्योंमें सहायक बन जाते हैं, मैं ही गड़बड़ होऊं, विह्वल होऊं, ममता करूं, अज्ञानी रहूं तो मैं ही अपने अपराधसे दुःखी होता हूं। इसमें दूसरे लोग क्या कर देंगे? इस व्रती श्रावकको सल्लेखनाके समयमें सर्वसे ममता छूट जाती है। सबसे अधिक बंधन है दृश्यमान पदार्थोंमें तो शरीरका बंधन है। सो यह शरीर जान लिया गया कि समस्त दुःखोंका बीज है, बड़े संताप और उद्वेगोंको उत्पन्न करने वाला है। सदा ही भयको उत्पन्न करने वाला है। अमूर्त ज्ञानमात्र जैसा है वैसा ही रहे, वहां

Version: 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

भयका क्या काम? अन्तस्तत्त्वमें कैसे हो सकता? असम्भव है, पर देहका बंधन है, देहका सम्बंध है तो उससे भय उत्पन्न हो रहा। कुछसे कुछ विचारता। यह देह तो जेलखाना है, जैसे बैरी जेलखानेसे नहीं निकल पा रहा, वहां रहता हुआ वह दुःखी हो रहा, ऐसे ही यह आत्मा इस देह जेलखानेसे नहीं निकल पा रहा और यह भीतर रहता हुआ अनेक कल्पनाओंसे दुःखी होता रहता है। इसका स्नेह क्या करना? इसका स्नेह तजकर वियोगका शोक तजकर सहजात्मस्वरूपकी उपासना करना।

सल्लेखनाधारीका निर्भय होकर अध्यात्मसाधनाका पौरुष—यहां भय किस बातका करना? जिसका भय लगा उससे ममता छूटे तो भय समाप्त। भय होना, शंका होना यह सम्यक्त्वका महादोष है। यदि भय शंका होने लगे तो वहां सम्यक्त्व नहीं रह सकता। सब कुछ निर्भर है अपने सहज आत्मस्वरूपके निर्णय पर। भय किस बातका? बाह्य पदार्थोंका मुझमें प्रवेश नहीं। बाह्य पदार्थ मुझमें कुछ परिणति बना सकते नहीं। मैं अपने आपमें अपनी योग्यतासे अपनेमें परिणाम बनाता रहता हूं। जब इसमें किसी दूसरी वस्तुका प्रवेश ही नहीं है तो भयका अवसर क्या? क्या भय आयगा? जो पुरुष अपने इस सहज आत्मस्वरूपको उपयोगमें नहीं लेते और बाह्य पदार्थोंसे अपना राग ममत्व रखते हैं उन जीवोंको भय रहता है। जैसे जीवन शोकमें गुजारा ऐसे ही यह जीवन भयमें भी गुजरा। आत्मस्वरूपकी सम्हाल किए बिना सबसे इसने भय माना, परिजनोंसे मित्रोंसे, सरकारी लोगोंसे, शत्रुवोंसे, चोरोंसे सबसे इसने भय माना और एक अंतस्तत्त्वकी दृष्टि हो तो वहां महान बल प्रकट होता है कि लौकिक हिसाबसे भी भय नहीं रहता, परमार्थ भय तो रहता ही नहीं। तो भयका कारण भी यह देहका सम्बंध है। बैठे हैं, किसी बालकने, पुरुषने पीछेसे आकर अटपट हल्ला किया तो यह डर गया। अकेला आत्मा भर हो तो वह डरेगा क्या? देहका सम्बंध है सो देखो आत्मामें भी भयका प्रभाव बन गया। तो भयका कारण भी यह देह है। ज्ञानी पुरुषको तो देहके विनाशका भी भय नहीं आता, अन्य भय तो आयेंगे ही क्यों? वह जानता है कि मरण कोई चीजका नाम नहीं है। जीव और देह एक जगह रह रहे थे सो अब देह अन्य जगह रह गया, जीव अन्य जगह चला गया, बस यही तो बात हो रही है। इसमें मरण किसमें हुआ? जीव-जीवकी जगह परिपूर्ण है। देहकी आयु देहकी जगह परिपूर्ण है, कुछ भी चीज कभी मरती ही नहीं। जो सत् है उसका कभी विनाश नहीं होता। तो ज्ञानीजीव अपनेको अमर रखता है, वह किसी भी बातका भय नहीं करता।

सर्वममत्व छोड़कर प्रभुवचनामृतपानकी धुन—सल्लेखनाधारी सर्वसे अत्यन्त विरक्त होनेसे रंच भी किसी भी स्थितिमें विषाद नहीं करता, जिसे देहसे भी ममता नहीं है वह किसी भी बाह्य परिणतिसे प्रभावित नही होता। ध्रुवसहज ज्ञानानन्दस्वरूप अन्तस्तत्त्वका अनुभव कर लेनेसे अब इस ज्ञानीको किसी भी प्रकारका स्नेह विरोध आदि कुछ भी कलुषता नहीं रही। यह तो बड़े उत्साहसे अपना साहस धैर्य प्रकट करता हुआ अमृतस्वरूप प्रभुवचनोंका कर्णपात्रसे पान करता है। इस श्रावकको सल्लेखनाके समय अध्यात्म अमृतके पानकी धुन लगी है, अतः दूसरे ज्ञानीजनोंके मुखसे अध्यात्म वचनोंको सुनता है, स्वयं अध्यात्म तथ्योंका स्मरण व मनन करता है। यह सल्लेखनाधारी ॐ नमः सिद्धेभ्यः, ॐ शुद्धं चिदस्मि, का सविनय आराधना करता है, अपनेमें अविकल्प स्थितिका पौरुष करता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मरणावसरमें बोधि समाधिकी परम शरण्यता—व्रती श्रावकने मरण समय तत्त्वज्ञानके बलसे परिजन, मित्रजन धन सम्पदा देह सभी से ममत्वका त्याग कर लिया है और इसी कारण अब उसके न शोक है न डर है, न स्नेह है, न विरोध है, किसी भी प्रकारकी कलुषता उसके चित्तमें नहीं है। ऐसा निर्मल भव्य आत्मा मरण महोत्सवमें चिन्तन कर रहा है कि इस मरणपथपर चलने वाले अर्थात् देहको छोड़कर अकेले शरीरको धारण करनेके लिए जाने वाले इस आत्माको बोधि और समाधिका लाभ हो। बोधिका अर्थ है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी प्राप्ति और समाधिका अर्थ है उसको उपयोगमें बसाये हुए चलना और उसका निर्वाह करते हुए अगले भवमें पहुंचना। सो परलोकके मार्गमें उपकारी वस्तु यही है। मरणके बाद जीवके साथ बोधि समाधि जायगी, देह भी साथ नहीं जाता। कुटुम्ब मित्रजन, धनसम्पदा सब यहींके यहीं पड़े रह जाते हैं। मैंने अनादिकालसे अनन्त खोटे मरण किया है जिनकी याद भी मुझे नहीं है, पर युक्ति बतलाती है कि जो मैं हूं सो अनादिकालसे हूं। और जब अनादिकालसे हूं तो किसी न किसी पर्यायमें रहा आया था। वह पर्याय कौनसी होगी? जगतमें जो ये पर्यायें दिख रही हैं ये ही तो होंगी और जो नहीं दिख रही हैं सो भी अनेक पर्यायें हैं। एक दो तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय पशु पक्षी देव, नारकी, मनुष्य, ऐसे भवों में रहकर अनन्तकाल व्यतीत हो गया। और अब तक उन भवोंमें रागद्वेष ममता करके खोटा ही मरण किया और यह दुर्गतिकी धारा बराबर चली आयी। एक बार भी सम्यक्मरण नहीं हुआ। यदि समाधिमरण होता तो संसारमें मरण करनेका, भ्रमण करनेका पात्र न रहता।

समाधिमरणका महत्त्व—समाधिमरण कितना अलौकिक वैभव है। इसके भविष्यका फैसला है उस समय कि भविष्य शान्तिमें रहेगा या कष्टमें ही गुजरेगा। और अन्त समयमें समाधिमरण बने इसके लिए जीवनमें अभ्यास करना है। यह ही मानलें कि हमारा मरण तो प्रति समय हो रहा है, आवीचिमरण तो है ही। जो आयुके निषेक खिर गए वे वापिस नहीं आते। आज जो जिसकी अवस्थाहो गई उसको बीती हुई अवस्था फिरसे वापिस मिलेगी क्या? न मिलेगी। तो फिर रहा सहा जितना जीवन है वह अच्छे भावोंमें व्यतीत हो, किसी दूसरेसे क्या लेना देना। सब जीव मेरे स्वरूपके समान हैं। सर्व सुखी हों, सर्वको उन्नतिका मार्ग मिले। जीवन जितना बचा है उसमें अच्छे भाव रहना चाहिए। किसी भी योग्य कार्यमें विघ्न न डालना। दूसरेको पनपता हुआ देखकर मनमें जलन न करना। यह संसार मायाजाल है, यहां जो दृश्य है वह परमार्थ नहीं है, परमार्थ तो अनादि अनन्त ध्रुव वह स्वरूप सामान्य है। तो जिसने अपने जीवनमें भलाईकी ही बात सोची, सर्व जीवोंका हित ही सोचा, अपने आत्मतत्त्वकी भावना बनायी उस पुरुषको मरण समयमें समाधिका लाभ होता है।

सल्लेखनाकी सिद्धिके लिए जीवनमें विधातव्य सप्तभावनाओंमें प्रथम भावना—पूजाके अन्तमें ७ भावनायें बोलते हैं वे ही प्रयोगरूप होना चाहिए जीवनमें, तब अन्त समयमें समाधिकी सुपात्रता होती है। पहली बात है शास्त्राभ्यास, ग्रन्थका स्वाध्याय, अभ्यास, पढ़ना, चर्चा। अपनी-अपनी भी सोचलो कि हमारे इस जीवनमें २४ घंटेमें कितना समय ज्ञानवार्तामें जाता है, यदि नहीं जाता तो उसका खेद मानना चाहिये। जिन्दगी यों ही व्यर्थ चली जा रही है, एक बड़ा अवसर मिला मनुष्य होकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि यह चाहे तो संसारके समस्त संकट दूर करनेका उपाय बना सकता है। ऐसा भला अवसर कब कब मिलेगा। संसारके जीवोंपर दृष्टि पसारकर देखो कैसे-कैसे कीड़े मकोड़े पतंगे एकेन्द्रिय जीव, कैसी स्थिति दुर्दशामें पड़े हुए हैं। यह मनुष्यभव मिलना बहुत दुर्लभ है देव भी इन्द्र भी इस मनुष्यभवको तरसते हैं। कब मैं मनुष्य होऊं, रत्नत्रयकी साधना करूं और संसारके जन्म मरणसे सदाके लिए छुटकारा पाऊं, ऐसा यह मनुष्य जन्म पाया और इसका महत्त्व न आंके और जैसा वह भाव बनायें विषयोंमें कषायोंमें उनमें बह जाय यह कितने खेदकी बात है। बाहरमें किसका बुरा विचारना। बुरा विचारनेसे कहीं बुरा नहीं होता दूसरेका, पर इसका बुरा अवश्य ही होता है। खोटे कर्म बांधे उनका उदय आयगा, इसे दुःखी होना पड़ेगा। सद्भावना होनेसे, उसके लिए शास्त्राभ्यास जीवनमें चलते रहना चाहिए। चाहे उपदेश देकर चले, चाहे पढ़कर चले, बांचकर चले, प्रश्नसे चले, चाहे पाठ करते हुए। मनन करते हुए शास्त्राभ्यास चले। जितना ज्ञानलाभ मिले वह तो अपनी कमायी और जितना ज्ञानसे दूर रहकर बाहरी बातोंमें उलझे रहे, फंसे रहे, बोलते रहे उतना ही टोटेमें, नुकसानमें। सो शास्त्रका अभ्यास होना एक बहुत महत्त्वकी बात है। वृद्ध हो जाय, आंखोंसे न दिखे तो भी अब धर्मात्माजन यत्रतत्र मिलते हैं, उनसे श्रवण, मनन ही तो, चाहिए, आत्माकी दृष्टि ही तो चाहिए। जैसे पढ़नेसे दृष्टि बनती है उससे भी जल्दी सुगमतया सुननेसे दृष्टि बनती है। तो शास्त्राभ्यास द्वारा अपने इस जीवनको सुवासित करना। आत्मवासनासे पुष्ट करना, यह कर्तव्य है जीवनमें। और देखिये—कितना ही कष्ट हो, कैसा ही क्लेश हो, आप शास्त्रके पढ़ने और लिखनेमें लग जायें, कष्टका विकल्प न चलेगा। अपने विचार लिखिये और ग्रन्थोंको स्वाध्याय कीजिए तो आपको शान्ति मिलेगी। कष्ट आनेपर कष्टकी तरफ ही दृष्टि जाय तो वह दुगुना हो जाता है कष्ट। कष्टरहित आत्माके ज्ञायक स्वरूपपर दृष्टि जाय तो कष्ट दूर हो जाता है। ऐसी योग्यता पानेके लिए चाहिए शास्त्राभ्यास। तत्त्वज्ञान बिना जगसे पार हुआ ही नहीं जा सकता। वह कौनसा बल है ज्ञानको छोड़कर जिस बलसे यह जीव प्रगति कर सके। ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञान ही हो, यह स्थिति है पवित्रताके लिए, आनन्द स्वरूप, सो शास्त्राभ्यास इस जीवनमें न छूटे। हर प्रकारसे तत्त्वज्ञानकी बात मननमें आये।

(२) **वीतराग सर्वज्ञ परमात्माके गुणोंका स्मरण करना**—दूसरा कर्तव्य है जिनेन्द्रगुणस्मरण। लोग देखते हैं, लोगोंके बीच हैं, दृष्टि यहां जाती है, पर यहांके क्रियाकलाप देखनेसे या जीवोंके अवगुण विचारते रहनेसे आत्मामें कुछ प्रगति नहीं हो सकती। चाहिये जिनेन्द्रदेवके गुणोंका स्मरण। प्रभु अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्तिके धारक हैं, इनका स्वरूप भी विचारें। कैसा अनन्तज्ञान? ऐसा ज्ञानविकास कि तीन लोक तीन कालके पदार्थ सब झलक जाते हैं। जो जीव सब पदार्थोंको झलकनेकी चाह करते हैं सब बातोंका ज्ञान हो जाय, क्या होता है आगे, इसका भाव बढ़ेगा, घटेगा तो बड़ा लाभ प्राप्त कर लेगा। ऐसा सोचने वालेके ज्ञानका विकास नहीं होता। प्रभुका ज्ञानका विकास है तो वहां रंच भी विचार, क्षोभ, रागद्वेष, कुछ करना है, ऐसी कुछ भी बात नहीं है। इसीलिए तीन लोक तीन कालका सबकुछ झलकता है। सो जैसा अनन्तज्ञान प्रभुके हैं वैसा ही मेरेमें शक्तिरूपसे पड़ा हुआ है, ऐसा मैं हो सकता हूं। स्वरूप एक ही समान है। जो प्रभु है सो मैं हूं। जिनेन्द्रके गुणोंका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्मरण पापरसको नष्ट करता है, पुण्यरसको बढ़ाता है, धर्ममार्गमें लगाता है। तो दूसरा कर्तव्य है श्रावकका कि वह जिनेन्द्र गुणका स्मरण करे।

(३) **संसारशरीर भोगनिर्विण्ण श्रेष्ठ पुरुषोंकी संगति करना**—श्रावकका तीसरा कर्तव्य है सज्जन पुरुषोंके साथ संगति करना। सज्जन पुरुष वह कहलाता है जो संसार, शरीर, भोगोंसे विरक्त है और अपने आत्म स्वरूपकी दृष्टि रखता है। संसारसे छुटकारा पानेका जिसका पौरुष चलता रहता है वह महात्मा सज्जन कहलाता है। तो सदा आर्य पुरुषोंके साथ संगति रखना यह ध्यानमें रहना। कर्मोदय ऐसा है जीवोंके कि कुसंगतिमें तो जल्दी लग जाता है जीव, और बहुत प्रिय लगते हैं कुसंग, क्योंकि विषयकषाय पुष्ट होते हैं कुसंगमें और यह जीव सदा रागी द्वेषी मोही विषयकषायोंको चाहता ही है। पर कुसंगका कैसा खोटा परिणाम है कि व्यसनोंमे लग जाय तो वह धनकी हानि करदे। कहीं ऐसी कषाय जग जाय कि अपने ही हाथसे अपने परिजनका घात कर दे। कैसी-कैसी विडम्बनायें बन जाती हैं कुसंगसे, जिनसे जीवोंका अकल्याणहो पतन हो, खोटी दशा हो वह सब कुसंगका फल है। यदि घरमें कुटुम्बीजन अज्ञानी है, मोही है, विषयकषायोंके प्रेमी हैं तो घरमें भी वह कुसंग ही है। घरमें पूरा धार्मिक वातावरण हो तब तो बुराई नहीं हो पाती, किन्तु धर्मसे विमुख हैं घरके लोग, विषयकषायोंके प्रेमी हैं तो भी वे ऐसी ही बात कहेंगे और रोज-रोज कहेंगे सुनते रहेंगे तो परिणामोंमें निर्मलता आ ही जाती है। कुसंग लाभ भला नहीं है इसलिए यह व्रती श्रावक यह भावना करता है कि सदा ही मुझे आर्य पुरुषोंकी संगति प्राप्त हो।

(४) **गुणवन्त पुरुषोंकी कथा करना**—चौथी भावना है—गुणवान पुरुषोंके, सच्चरित्र पुरुषोंके गुणोंके समूह में कथा की जाती रहे। मैं दूसरों के गुणों को बखानूं। उनके बड़े पाप का उदय है जिनको दूसरों के दोष ही दोष दिखते हैं, क्योंकि जब दोष ही दिखे तो वह स्वयं दोषी है। दोषका प्रेमी है तब दूसरोंके दोष ही दोषपर दृष्टि जाती है। और जब दोषपर दृष्टि गई तो खुदके उपयोगमें तो वह दोषका फोटो आ गया। दोषाकार ही ज्ञान बन गया, यह तो तत्काल नुकसान हुआ। किसीके दोषकी कहानी न कीजिए। दूसरेकी निन्दा करना यह बहुत बड़ा अवगुण है, निन्दकका सारा ढचरा बिगड़ जाता है, बुद्धिमें बल नहीं रहता, वचनमें ओज नहीं रहता, मनमें अच्छी बात नहीं समा पाती, तब फिर सोचिये तो सही कि परनिन्दासे मेरा अटका क्या है? न मेरी उसमें उन्नति है बल्कि अवनति ही अवनति है। सो यह व्रतीपुरुष भावना करता है कि सच्चरित्र पुरुषोंमें गुणोंकी कथा ही मेरी जिह्वासे निकले, गुणोंकी कहानी कहेंगे, गुणोंकी दृष्टि रखेंगे तो स्वयंमें भी गुणोंमें विकास चलेगा। हे प्रभो, मेरी सदा गुणों पर ही दृष्टि बने ऐसी भावना और प्रयोग सम्यग्दृष्टिके चल रहा है।

(५) **परदोषकथनमें मौन रहना**—५वीं भावना है 'दोषवादे च मौनं' दूसरोंके दोष कहनेमें मेरा मौन भाव रहे। दोष कहनेसे कितना नुकसान है, पहले तो यह ही ज्ञान दूषित हो गया, इस पर दोषोंका फोटो छा गया, दोषाकार बन गया, लो यहींसे अंधेर नगरी चली अब। फिर दोष जब चलेंगे तो लोग कहेंगे कि यह बड़ा ओछा आदमी है। यह दोष ही दोष बखानता रहता है। इसकी निरन्तर दोष ही दोषपर दृष्टि रहती है। तीसरी बात—जिसके दोष कहा जायगा वह शत्रु बन जायगा और उसके जितने

http://sahjanandvarnishastra.org/

मित्रजन होंगे वे भी बुरी निगाहसे देखने लगेंगे। तब जीवनमें विपत्तियां बिछ जायेंगी। दूसरेके दोष कहते समय दिल कंप जाता है यह सबको अपना-अपना अनुभव होगा। दूसरोंका गुण कहते समय चित्तमें उमंग हर्ष रहता है। दोषवादमें कितना नुकसान है उस सिलसिलेसे अगर झगड़ा बढ़ जाय तो मारपीट जेल सब कुछ हो जाता है। व्रती श्रावककी भावना है कि मेरा दोष वादमें मौन भाव रहे। मनुष्योंको जो जिह्वा मिली है सो कितनी श्रेष्ठ मिली है। अन्य जीवोंपर दृष्टि डालकर देखें, अनन्तकाल तो इस जीवको जीभ ही नहीं मिली। एकेन्द्रिय रहा, पृथ्वी आदिक रहा, निगोद रहा और दोइन्द्रिय बना, और जीभ मिली तो केचुवा जोंक ये प्राणी तो यहां दिखते ही हैं। उनकी जीभका कितना मतलब होता है? क्या बोल सकते हैं? आवाज भी कैसी कि जिसका कुछ पता भी नहीं पड़ता। होती तो होगी आवाज, हवा तो निकलती हीं है पर उस जीभसे क्या मिला जिसको वाणी नहीं मिली। यह ही हाल दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय का है, असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवका है। कुछ बोल ही नहीं सकते। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंको जिह्वा मिली तो देख लो घोड़ा, गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, कुत्ता आदि जानवरोंकी कैसी बोली है—कहीं बांय-बांय कर रहे, हिनहिना रहे, भिन भिना रहे, उनके कहां ठीक-ठीक वचन निकला करते हैं? एक मनुष्यको ही ऐसा जिह्वा मिली कि वचन बोले जा सकते हैं, जिन वचनोंका वाच्य अर्थ है, लोग उस अर्थको जानते हैं, इतनी श्रेष्ठ यह स्थिति है, और यहां हम इस जीभका सदुपयोग अगर नहीं करते तो फिर यह परिणाम होगा कि मानों कर्मविधाताने यह देखा कि इसको जीभकी जरूरत नहीं है, क्योंकि यह इसका दुरुपयोग कर रहा है तो अब इसे जीभ न देना चाहिए, अर्थात् एकेन्द्रिय बन जायगा। बहुत बड़ी सावधानी रखना होती है वचन बोलनेकी और जीवनमें यह अभ्यास बनाइये कि बोलिए कम और सुनते जाइये सब कुछ। विचारिये और जब बोल निकले तो ऐसा निकले कि दूसरोंको भी शान्ति हो। तो यह व्रती श्रावक मनन कर रहा है अपने कर्तव्यकि किसीके भी दोष कहनेमें मेरी जिह्वा न डोले। मौनभाव रहे।

(६) **प्रिय हित वचन ही बोलना**—सभी जीवोंके प्रति प्रिय और हित वचन बोलूँ। दूसरे जीव मेरे ही स्वरूपके समान भगवन्तस्वरूप हैं, उनको देख करके तो भीतर प्रसादहो जाना चाहिए। यह भगवत्स्वरूप है, किसी भी जीवको देखो मनुष्योंकी तो बात क्या, पशु पक्षी कीड़ा मकोड़ा एकेन्द्रिय जीव पेड़ पौधे, इनको देखकर एकबार चित्तमें यह तो विचार लावें कि यह भगवत्स्वरूप हैं। इसका आत्मा ज्ञानमय है, चैतन्यवरूप है। जो प्रभुका स्वरूप है सो इनका स्वरूप है, जिससे आप वचन बोलें उसके प्रति तो यह सोचना ही चाहिए एक बार कि यह भगवतस्वरूप है, जीव है, इसमें कोई अपराधी बनता है तो वह कर्मका उदय है, ऐसी ही छाया पड़ी, झांकी हुई, बात बन गई, पर जीव स्वयं तो अविकार और निरपराध है। ऐसा चिन्तन करके फिर आप बात बोलें वे प्रियहित वचन निकलेंगे।

(७) **आत्मत्त्वमें भावना**—७वीं भावना—जो समस्त भावनाओंका उद्देश्यरूप है, प्रयोजनरूप है वह है आत्मतत्त्वकी भावना होना। मैं क्या हूं, स्वयं क्या हूं, सहज क्या हूं। बिना दूसरेके सम्बंधके मैं क्या हूं? अपने आपके सत्त्वसे मैं चिदानन्दस्वरूप हूं। प्रतिभास और आनन्द यह निजका स्वरूप है। प्रतिभास होता ही रहे ऐसा यह सर्व द्रव्योंका राजा है आत्मा। सब द्रव्योंमें आत्मा ज्ञाताद्रष्टा सबसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निराला यह मैं आत्मा स्वयं ज्ञानान्दमय हूं, ऐसी निरन्तर भावना होना। इस आत्मतत्त्वकी भावनाके प्रसादसे ही पापरस मिटता है, पुण्यरस बढ़ता है, धर्म मार्गमें गति होती है, जीवनमें ये ही तो करनेके काम हैं। यह अन्तः क्रिया होती रहे फिर तो जो होगा वह सहज ठीक ही ठीक होगा। तो अपने आत्माकी सम्हाल यह ही सबसे बड़ा अपना पौरुष होना चाहिए। तो इस सल्लेखना धारी श्रावकके मनन चल रहा कि जीवनभर तो अच्छे आचारसे रहा। अब इस मरणसमयमें मेरा शुद्ध आचार भंग न हो, बोधि और सामायिक परिणाम सहित ही इस शरीरको छाड़कर जाऊं।

सहजात्मस्वरूपकी उपासनाकी भावना—समाधिमरणका अर्थ है कि इस देहका तो वियोग हो जाय पर आत्माका जो दर्शन ज्ञान स्वभाव है उस शील परिणामसहित इसका इस देशसे गमन हो, इसे कहते हैं समाधिमरण। और कुमरण कहते हैं उसे जहां संक्लेश परिणाम करके मोह ममत्व रखता हुआ देहसे गमन करता है। सल्लेखनाधारी पुरुष चिन्तन कर रहा है कि मैंने अनादिकालसे लेकर अनन्तकाल कुमरण किया, जिसके फलमें कुयोनियोंमें जन्म लेकर दुःख ही पाया। अब हे प्रभु, हे वीतराग सर्वज्ञ देव, हे सहज आत्मस्वरूप मेरी यही प्रार्थना है, अभिलाषा है कि मेरी दृष्टि अपने स्वभावसे न चिगे और आन्तरिक प्रसन्नताके साथ इस देहसे विदा होऊं, और अच्छा हो कि मरण समयमें वेदनायें न हों और होंतो तत्त्वज्ञानके बलसे, उनका मेरे अनुभव न बने, मैं तो केवल एक सहज चित्प्रकाशमात्र अपने भगवत आत्माको ज्ञानमें लिए हुए हूं। इस ही की आराधना करता हुआ इस देहसे प्रयाण करूं। मेरेको रत्नत्रयका लाभ हो और समाधिका लाभ हो। एतदर्थ अब उस वीतराग सर्वज्ञके गुणोंका ही स्मरण करता हूँ और निश्चयतः मैं अपने सहज ज्ञानानन्दस्वरूप अंतस्तत्त्वकी उपासना करता हूं।

कृमिकुलकलित देहके वियोगमें ज्ञानी के विषादका अभाव—इस देहसे अलग होनेका विषाद क्यों? यह देह कोई सारभूत चीज है क्या? सैकड़ों कीड़ोंके समूहसे भरा हुआ यह देह है। यह देह हाड़ मांस मज्जा आदिकका पिण्ड है। इसके ऊपरकी सजावटका पलस्तर और चमड़ेका रंग रोगन इनको यदि न देखा जाय तो भीतर क्या निरखनेमें आएगा? जैसे कि शमशानमें पड़ी हुई हड्डियोंको जोड़कर एक ढांचा बना दिया जाए ऐसे जर्जर सैंकड़ों कीड़ोंके समूहसे भरे हुए इस देह पिंजरामें मेरेको ममता नहीं है। इसका वियोग होता है तो मेरेको कोई भय नहीं है। यह शरीर पौद्गलिक है। मैं ज्ञानशरीरी हूँ। मेरा स्वयंका विग्रह (शरीर) ज्ञान है। ज्ञानको शरीरकी उपमा देनातो भला नहीं है, पर ज्ञानही मेरा सर्वस्व है, बोडी है यह अभिप्राय जानना। शरीरतो उसका नाम है शीर्ण होवे, गले, उसका नाम है शरीर और बोडी नाम है उसकाजो इसका आत्मभूत हो। वही वस्तु जिससे वह निर्मित है जिसे कह दीजिए विग्रह। इसका तो ज्ञान ही विग्रह है। काय, देह, शरीर और विग्रह इनके चार नाम हैं। कायतो कहते हैं उसे जो संचित हो, पुद्गल परमाणुवोंका संग्रह हो उसे कहते हैं काय। जोबढ़ता रहे उसे कहते हैं देह। जो गले सड़े, जीर्ण हों उसे कहते हैं शरीर, और जिसका विशेष रूप से ग्रहण हो उसका नाम है विग्रह। मेरा काय ज्ञान है, उसीके अविभाग प्रतिच्छेदोंका प्रकटपना होता है। मेरा यह ज्ञानही देह है, इस हीके विकासकी डिग्रियोंका बढ़ाव होता रहता है। तो मेरा ज्ञान ही विग्रह है। याने शाश्वत अनादि अनन्त ज्ञान स्वभावका व उसकी वृत्तिका ही ग्रहण मुझमें रहता है। ऐसा ज्ञान विग्रह

http://sahjanandvarnishastra.org/

वाला यह मैं आत्मा कभी मरता ही नहीं हूँ, पूर्ण सत् हूं। जैसा हूं वैसा ही यहाँसे उठकर चला गया। मेरेको शोक क्या? भय क्या?

मृत्युमहोत्सव में अविकार स्वभावके दर्शनकी प्रसन्नता—मरण समय में भय उनके ही होता है जिनको देह धन परिजन आदिकमें ममता बसी रहती है, वे बड़े संक्लेशसे मरण करते हैं। यह देह पिञ्जर विघटता हैतो विघटे पर मेराजो विग्रह है, ज्ञान है वह कभी विघट ही नहीं सकता, जिस ज्ञान में अतुल सामर्थ्य है। जिसमें सकलपदार्थ झलक जाएँ ऐसा अमूर्त ज्ञानमात्र ज्योति स्वरूप मैं हूँ। इसमें क्या संकट है। इस ही स्वभावको दृष्टि में रखता हुआ मैं महाप्रयाण करूं। अन्य प्रकारकी मेरे दृष्टि न हो, मैं अविनाशी हूँ, ज्ञाताद्रष्टा रहना मेरा स्वभाव है। केवल मैं अपने सत्त्वसे जो हूँ उसका मात्र प्रतिभास काम है, जानन हुआ, दर्शन हुआ बस यह ही मेरी वास्तविक वृत्ति है। स्नेह, विषय, शोक यह मेरी वास्तविक वृत्ति नहीं है, किन्तु उदय में आए हुए कर्मोंके अनुभागकी वह झलक है। जैसे जल कहीं गंदा नहीं होता। जिन जलोंको हम गंदा कहते हैं उनमें जल गंदा नहीं है, किन्तु धूलकण, करकट आदि जो बाहरी चीज़ें उसके साथ मिल गई हैं गंदी हैं कुछ बाहरी चीजें जल में इस तरह मिली हैं कि वह जल ही गंदा लगने लगा। पीनेके कामका ही नहीं मगर स्वरूप देखिए तो जल कभी गंदा नहीं होता। जल-जल ही है, जलके साथ जो कलमसता है वह अन्य वस्तुकी है। दर्पण स्वयं अपने आप किसीके फोटो रूप नहीं है। मगर इसका स्वभाव है फोटो, तो वह स्वभावतो रहा आया मगर ठीक फोटो न झलके याने कांच गंदाहो, दर्पण गंदा होनेपर और तरहसे झलके, मलिन झलके, तो उस दर्पणके साथ कोई परवस्तु उपाधि लगी हुई है, तेल चिपक गयाहो या कांचके भीतर ही बनते समय कोई दूसरी वस्तु आ गई हो या कुछ पोलसी हो गई हो कुछ ऐब है तब बुरा झलकता है, ऐसे ही आत्माके साथ कोई ऐब लग गया पर उपाधि लगी है इस कारणसे रागद्वेष कल्पना आदिक होते हैं।

स्व व परके भेदविज्ञानका महाबल—मैं स्वयं अपने आपके सत्त्वमात्र हूँ। जैसे हंस मिले हुए दूध पानी में दूधको ही ग्रहण करता, पानीको छोड़ देता, उसकी चोंचमें ऐसा गुण हैकि मिले हुए दूध पानी में चोंचके पड़ते ही पानी अलग हो जाता, दूध अलग हो जाता। जैसेकि अन्य कई वस्तुएँ हैं ऐसीकि मिले हुए दूध पानी में डालदें तो दूध अलग होता, पानी अलग हो जाता। और कुछतो ऐसा होता ही है, जैसे गरम दूध में नींबू डाल दिया तो पानी अलग हो जाता। दूध गाढ़ा होकर (जमकर) अलग हो जाता, और भी कई वस्तुएँ ऐसी हैं कि उस मिले हुए दूध पानी में डालदी जाएँ तो पानी अलग हो जाए, दूध अलग हो जाए। जो तारीफ उस वस्तु में है वही तारीफ हंस की चोंच में है। भेद विज्ञान हो गया। अब वहाँजो उपादेय तत्त्व है उसको ग्रहण करना, जो हेय तत्त्व है उसको छोड़ देना। मेरी कल्पनामें राग और ज्ञान मिला जुला है। वहाँ भी रागका स्वरूप रागमें है, ज्ञानका स्वरूप ज्ञान में हैं, स्वरूप नहीं बदल गया, पर ऐसा मिश्रण हो गयाकि उस रूप न ज्ञान रहा, न उसका रूप रंग रहा किन्तु कल्पनारूप बन गया। उस कल्पनामें उस तत्त्वज्ञानके बलसे राग और ज्ञानको जुदा निरख रहा हूँ। सो मैं ज्ञानको ग्रहण करता हूँ, रागको छोड़ता हूं। मुझ आत्मामें और इस देहमें अत्यन्त अन्तर है। बिल्कुल विपरीत है। देह पौद्गलिक है, हाड़ मांसका पिण्ड हैं। यह मैं आत्मा ज्ञानरूप हूँ, अविनाशी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org
हूँ, देह विनाशीक है, बिखर जाएगा इसमें आगभी लग जाती, मैं अविनाशी हूँ, मैं बिखरता नहीं, मुझमें आग नहीं लगती। अत्यन्त उल्टी दोनों चीजे हैं मैं और देह। तो इस देहके मिटनेका भय क्या? मैं अपने आपके स्वरूप में हूँ।

जीर्णशीर्ण दुर्गन्धित कुटीको त्यागकर नवीन सज्जित कुटी में पहुँचने में प्रसन्नताका ही अवसर—जैसे कोई मुसाफिर रेलगाड़ी में किसीके मना करने पर कि यहाँ मैं बैठा था पहले, तो पास में दूसरी सीट खाली होने पर वह उठकर दूसरी सीट पर बैठ जाता है। आयुकर्मका तकाजा है कि अब आप इस सीटपर न बैठिए, यह सीट गंदी हो गई। बुढ़ापेसे यह जर्जर सीट हो गई, आप इस नई सीट पर जाइए, हम आपके लिए तैयार रख रहे हैं, तो उस जीवको वह पुरानी गंदी सीट छोड़कर नई सीटपर जाने में क्या तकलीफ? रेलमें आपकी सीटके पास बैठे हुए किसी बच्चेने मानो टट्टी पेशाब करके आपकी सीटको गंदा कर दियातो उस बच्चेकी मां आपसे कहती है कि आप उस सीटपर आ जावो, आपकी यह सीट गंदी हो गईतो बतावो वहां क्या आप उससे लड़ते हैं कि मुझे तो मेरी ही सीट चाहिए, यह न चाहिए? नहीं लड़ते। वहां तो आप खुशी-खुशीसे उस सीटको बदल देते हैं। तो ऐसे ही जब कोई मानलो समझा रहाकि अब तेरा यह शरीर जीर्ण शीर्ण हो गया, गंदा हो गया, इससे बदबू आने लगी, अत्यन्त रुग्ण हो गया, इसको कोई देखता है तो डरने लगता है, तेरेको नया शरीर दिया जा रहा है, इसे छोड़, और उस समय कोई यदि यह कहे कि मैं नहीं किसीकी सुनना चाहता मैं तो इसी शरीर में रहूँगा तो बताओ यह उसकी बेवकूफी है कि नहीं? अरे क्यों व्यर्थ में इस शरीर से ममता करते? यह लोकतो ३४३ घनराजू प्रमाण विस्तृत है। अगर सांसारिक वैभवोंकी चाह है, उनकी प्रीति नहीं छूटी तो यहांका वैभव न सही, अगले भवमें मिल जाएगा। उसमें भी टोटा क्या?

समाधिमरण में ज्ञानीका विशेष पौरुष—मरणसमय भी वैभवकी आकांक्षा कोई रखे तो वह तो उसका कुमरण है। अरे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त शक्ति जैसी विभूतिका भी तो ख्याल कर। ये अत्यन्त भिन्न पौद्गलिक पदार्थ हैं जिनके संसर्गसे तेरा घात हो रहा। तू उसको क्यों चाहता? मैं चाहूंगा, मैं तो अपने अनन्त ज्ञानादिकके स्रोतरूप सहज कारण परमात्मतत्त्वकी उपासना करूंगा। यहतो मरण महोत्सव है। इस मरणकालमें उसका आगेके सारे भविष्यका फैसला होना है। जीवनभरतो पाठ याद किया और परीक्षाके समय पागल हो गया तो यह उसका खोटाही भवितव्य है। ऐसेही इस जीवनमें सारे जीवनतो खूब व्रत तप निभाया और मरण समय में मोह मदमत्त होकर पागल हो जाऊं तो समझोकि मेरा सारा भविष्य खोटा रहेगा। यह परीक्षणका समय है। बच्चे लोग परीक्षाके समय और अधिक तैयारी रखते हैं। तो यहां भी मरण समय में, जीवनमें जो सावधानी बरती उससेभी अधिक सावधानी यहां मृत्यु महोत्सवके समय रखना है। यह मृत्यु महोत्सव मुझे प्राप्त हुआ है तो इसमें भय किस बातका? मैं स्वरूप में स्थित होता हुआ अन्य देहमें स्थित हो जाऊंगा।

स्वयंसे ही स्वयंके हितकी अभ्यर्थना में लाभ—सारा क्लेश मोहका है। दूसरों से प्रार्थना करना कि मुझे कष्ट न देना, मुझे सुख देना, मुझे शान्ति दिलाना और प्रार्थना करना उनसे जिनमें मोह बसा है तो यह कैसी बेजोड़ यात्रा है, जैसे किसी रथ में हाथी और गधा दोनोंको एक साथ जोत दिया

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाएतो रथ न चलेगा ऐसे ही मैं चाहता हूँकि मुझे शान्ति मिले, समाधि मिले, उत्तम परिणामसे मरण करूं और वह चाहूं मैं अपने कुटुम्बसे, परिजनसे, तो यह बात क्या संभव है? कठिन है। जैसे काजलकी कोठरी में कितना ही सयाना जाए पर काजलकी एक न एक कोर लग ही जाएगी ऐसे ही घरके कुटुम्बीजनों से समाधिमरण की अभिलाषा रखेंकि ये मेरा सारा काम बना देंगे तो बड़ा मुश्किल है। घर के लोग सुना रहे हैं—भाई क्या सुना रहे हैं? वैराग्यकी बात, और यह घरका आदमी सुन रहा है और मनमें सोच रहा हैकि मेरा मुन्ना सुना रहा है वैराग्य की बात। अरे मेरा मुन्ना, यहतो बीच में लगा हुआ है। वैराग्यकी बात कहां से आयगी? तो उस समय सम्बंध रखें त्यागीजनोंका, श्रावकोंका, अन्य जनोंका, बाहरसे आए हुए पुरुषोंका। कुटुम्बीजनोंसे धर्मध्यान सुननेका क्या अर्थ है? उतना ही जैसेकि पति पत्नी मिलकर भगवानकी पूजा करते हैं। पूजा कर रहे हैं, भीतर लगाव लगा हैकि मैं पत्नी सहित पूजा कर रहा हूँ, रागभाव तो निरन्तर लिए हुए हैं। पूजा कहां हो रही? तो उसकी करतूत भी सामने नजर आती। जब फलका छंद पढ़ेंगे तो खुदकी रकेबी में रख लिया काला कमलगट्टा और स्त्रीकी रकेबी में धरेंगे बादाम। यह करतूत भी सामने नजर आ रही कि कितना रागवश पूजा कर रहे। जो हालत वहां है वही हाल समाधिमरणका है जो अपने ही परिजनों से धर्मश्रवण सुनना चाहता है। यद्यपि आवश्यक यह भी है कि अपने परिजन से धर्मश्रवण करेंगे मगर उसका फल इतना ही है कि यह तो चाह रहा है कि इनसे ममता त्यागें। उनकी ओरसे भी सहयोग मिल रहा कि ममत्व त्यागें पर ऐसा होते होते भी कभी-कभी राग हो बैठेगा। उन श्रावकोंका महाभाग है जिनको परिजन तो दें मौका कि समाधिमरण होने दो और साधुजन विद्वज्जन समाधिमरणका सम्बोधन रखें, उनका समाधिमरण सुगम होता है।

सल्लेखनाधारी का भविष्यविषयक मंगलचिन्तन—सल्लेखनाधारी चिन्तन कर रहा हैकि जैसे कोई टूटी-फूटी कुटीसे निकलकर नए महलमें जाता है तो बड़े उत्सवके साथ जाता है, ऐसे ही यह मैं आत्मा जीर्ण शीर्ण शरीरसे निकलकर एक नए देहमें जाता हूँ तो मेरा इसमें नुकसान क्या है? वह चित्त में प्रसन्नताके साथ उत्सवके साथ जाता है। प्रसन्नता महोत्सवके साथ मरण हो तो जो वैभव यहाँ पाया है उससे कई गुना वैभव वहाँ मिलेगा। इसकी परवाह क्या करता? यहाँके समागमों में ममता क्यों रखता? और यहाँके समागमों में ममता रखता हुआ मरण करेगा तो न यहां रहना, न आगे मिलेगा। यदि मैं अपने ज्ञायकस्वभाव में ठहरता हुआ, दूसरों से ममत्व तजता हुआ परलोक जाऊंगा तो धातु उपधातुरहित देह में पहुँचूँगा जहाँकि अनेक देव पहलेसे ही आदर स्तुति करनेके लिए खड़े होंगे। जैसे यहाँ कोई पुण्यवान बालक उत्पन्न होता है, गर्भसे निकलता है तो ढोल मंजीरा गान तान ये अनेक उत्सव होने लगते हैं तो ऐसे ही देवगतिमें भी पुण्यवान जीव उत्पन्न होते हैं वहाँ भी अनेक देव खड़े होकर उसकी प्रशंसा करते हैं और वह अकृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदनाको पहले जानेका भाव रखता है तो उसके साथ वे यात्रा करते हैं। सो समाधिसहित मरण होगा तो वैक्रियक देह में देव होऊंगा, महान् ऋद्धि धारक देवदेह पाऊंगा और जो भय करके, ममता करके यहांका मरण बिगड़ा तो एकेन्द्रिय आदिकके शरीर में जाकर मैं जड़वत् हो जाऊंगा। अब कुछही मिनटोंमें फैसला होने वाला है। बताओ आपको देव बनना प्रिय है या एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय आदिक जीवों में उत्पन्न होना प्रिय है? यहाँ मोह ममता करनेका तो फल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है पेड़ पौधा आदिक बनना और यहांका ममत्व छोड़कर अपने सहज आत्मस्वरूपकी आराधना सहित मरण करें तो वहां दिव्य देह में उत्पन्न होना होगा। इन समस्त समागमोंको पर जानकर मैं उनसे ममत्व तजता हूं। सल्लेखनाधारी भलीभांति सर्वकुछ वस्तुस्वरूप विचारकर सर्वसे विरक्त होकर सहज आत्मस्वरूपमें ही मग्न होता हुआ संतोष पाता है। ममत्वके त्यागका भी एक बड़ा सुन्दर अवसर है। ऐसे अवसर में मैं सर्वपरपदार्थोंका लगाव छोड़कर अपने सहज अमूर्त चैतन्य प्रकाशमय परमात्मतत्त्वमें ही रमता हूँ। अन्य कुछ वृत्ति बनाना मेरे लिए लाभकारी नहीं है।

मृत्युमित्रके उपकारका विचार—जीवनमें भले प्रकार व्रतोंका पालनकर यह व्रती श्रावक मरण समय में चिन्तन कर रहा है। यह जो आज मृत्युका अवसरआ रहा है जो बड़ा मित्र है। जो मैंने जीवन में अनेक व्रत तपश्चरण किया सो उन किए हुए पुण्यकार्योंका फल इस मृत्यु मित्रके बिना प्राप्त नहीं हो सकता। करणानुयोग के अनुसार जो आयु बंध गई है, जो पुण्यकर्म बांधे हैं, जिनका फल देवगति में मिलता है, अन्य सुगति में मिलता है तो वह फल तब ही मिल पाएगा जब मरण होगा और इस जीर्ण शीर्ण गले शरीरसे निकालकर यहांके दुःखोंसे जो छुटकारा दिलाएगा वह मृत्यु मित्र ही तो है। जीवन में ६ कायके जीवोंकी हिंसा टालकर प्रवृत्तिकी। धर्मबुद्धिसे अनेक सदाचारोंका पालन किया। सत्य वचनपर डटे रहे, चाहे कितनेही कष्ट सहे, पर असत्य कभी बोला नहीं, पर धनका लोभ करके उसे कभी छूआ नहीं, परनारी, परस्त्रीको निरखकर कभी कामभाव किया नहीं। और परिग्रहमें तृष्णा नहींकी परिग्रह परिमाण किया, संतोष किया, ऐसे कर्तव्यसे जो पुण्य बांधे उसका फल मृत्यु मित्र बिना कौन दिखा सकता है? कुछ समयकी ही तो बात है, जल्दी ही सुख सम्पदामें और धार्मिक वातावरणमें हमारी स्थिति होगी, फिर इस मरणका भय क्या है? इस समय यदि आर्तध्यान रौद्रध्यान परिणाम होगातो नरकगति, तिर्यञ्चगति में उत्पन्न होकर अनेक दुःख भोगने पड़ेंगे। सो अब उस धनसम्पदामें, परिजन में परिग्रहमें ममत्व छोड़कर चिन्तामणि कल्पवृक्षके समान इस समाधिमरणको न बिगाड़ूँ। मैं अपने स्वरूपको निहारता हुआ इस शरीर से प्रयाण करूं।

विविध कष्टप्रद देहसे छुटकारा में विषादका अनौचित्य—यह सल्लेखनाधारी श्रावक चिन्तन कर रहा है कि इस भवमें गर्भसे लेकर अब तक कष्ट ही भोगा कल्पनासे। पर सारे जीवन में पाया क्या? कष्ट। और मोहके वश होकर उन कष्टोंमें ही राजी रहा और मोह न छोड़ सका। गर्भ में कितने कठोर दुःख। कितनेसे पेटकी छोटी जगह में बंध करके रहना, हाथ, पैर, सिर, अंग आदिक बनने पर भी चिपका हुआ औंधे मुख बना रहना, मांने जो खाया पिया, उसका उसही रसकी नलीसे आहार हुआ। कैसे दुर्गन्धमय स्थान में इन ९ महीने रहना पड़ा। फिर जब गर्भ से निकलेतो उस समयका दुःख मरणके दुःखसे कम नहीं होता, पर और लोगोंको क्या पता? और लोग तो गाजे बाजे नाच में ही उमंग सहित हर्ष मनाते हैं। परजो बच्चा गर्भसे निकल रहा वह कितना कष्ट पा रहा है इसका अनुभव तो उस बालकको ही होता है। गर्भ से निकलनेका भी बड़ा दुःख है। जैसेकि देखा ही करते हैं यहां, कुछ चेतना सही नहीं, सावधानी नहीं, समझका विकास नहीं। कुछ बड़ा हुआ तो अनेक कल्पनाएँ करके दुःख मानने लगा था। जो इष्टवस्तु चाहिए वह न मिले तो कष्ट, यह इतने में भी कष्ट मानता रहा, यदि मांकी गोदमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चढ़ा हुआहो और नीचे बैठाल दिया गया तो वह रोने लगा। मानों उस बच्चे ने बड़ा अपमान महसूस कियाकि कहाँ तो ऊँचे चढ़े हुए थे और कहाँ मुझे नीचे पटक दिया, अनेक प्रकारके दुःख हैं, जहाँ कुछ होश नहीं, जहाँ चाहे मलमूत्र कर दिया, गंदी चीज भी मुखमें डालनेको तैयार हुए, ऐसे कठिन दुःखों में समय बीता। कुछ और बड़े हुए तो मां बाप स्कूल में पढ़ानेको ले गए। यह पढ़ना नहीं चाहता, घरमें पिटाई होती, स्कूलमें पिटाई होती, अथवा कुछ होशियार हैतो भी खेलना बचपन में बहुत पसंद होता, उस खेल में बाधा आती है, वहां कष्ट मानने लगते हैं। फिर विद्याध्ययनके कष्ट, दूसरे की डॉटके कष्ट। चाहे अपराध भी नहीं किया उसमें फिर भी उसका बाप जरा-जरासी बात में झुंझला जाता, और थोड़ा बहुत अपराध बन गया तबतो डॉट ही डॉट पड़ती है। उसका दुःख भोगा। जैसे-जैसे बड़े होते गए वैसेही वैसे विकार भावके कारण दुःख और बढ़ते गए। बड़ा हुआ और मानों गृहस्थी बसी तो अब विकल्पोंकी जाति बदलने लगी, और भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ करके जरा-जरा सी घटनापर वह खेद मानने लगा। जीवन भरही दुःख पाया है।

सन्तानोत्पत्तिके संदर्भ में कष्टका चित्रण—पंडित आशाधरजी ने एक चित्रण किया है। जिस समय इस पुरुषकी स्त्रीके गर्भ रह गयातो कितना कष्ट है उस बच्चेके कारण किआते ही उसने इस पुरुषकी प्रिय स्त्रीका रूप बिगाड़ डाला। स्त्री दुर्बल हो गई, बेढंगी हो गई, रूप बिगड़ गया, यह बच्चा गर्भ में आया तो है, पर इसकी कितनी निर्दयता है अपने माता-पिता पर, इसका चित्रण किया है। जब गर्भके दिन करीब-करीब पूरे हो गए तो उन दिनों उस बच्चेके माता पिता अत्यन्त चिन्तित हो जाते कि पता नहीं अब कैसे क्या होगा? ठीक-ठीक काम निपट पाएगा या नहीं। कहीं कोई कठिन घटना तो न बन जाएगी, यों दुःख मानते रहे उस बच्चेके माता-पिता। जब वह बच्चा उत्पन्न हो गया तो उसकी सम्हाल में अनेक-अनेक प्रकारसे दुःख मानते रहे। जब वह बच्चा बड़ा हुआ और उसकी भी शादी हो गई तो उसने माता पितासे दृष्टि हटाली, क्योंकि उसका उपयोग अब बदल गया। उस समय भी माता-पिता को दुःख। और बड़ा होकर कही किसी बातपर घटना लेकर वह दुश्मनसा भी बन जाए। तो इस जीवने मनुष्यभव में आकर कष्ट ही कष्ट भोगा। जैसे तैसे जीवन निकला, बुढ़ापा आया तो उस बुढ़ापे का प्राकृतिक कष्ट। तो ऐसी कष्ट वाली पर्यायसे निकलकर नवीन देह में पहुंचेंगे और धर्म पुण्यके प्रसादसे स्वर्ग में पहुंचेंगे, तो बताओ इस मृत्यु से घृणा करना चाहिए या उसके अवसर में उमंग लाना चाहिए?

देहबन्धनके कारण ही हुए पराधीनता, परिश्रम, व्याधि आदिके दुःखोंसे छुटकारा पाने का उपाय स्वाधीन विश्रान्त रोगरहित अविकार चित्स्वरूपका उपयोग—यह सल्लेखना व्रतधारी अपने आपमें मनन कर रहा है कि इस कर्मविपाक ने, इस शत्रु ने मुझे ऐसा संसार में पटक रखा हैकि मैं इन्द्रियके वश होकर नाना प्रकारके दुःख भोग रहा हूँ। नाना प्रकारके भूख प्यास आदिककी वेदनाएँ कितनी कठिन हैं। कोई वेदना आ जाए तो चलो एकसे तो निपट लिया मगर एक दिनमें कई बार उससे निपटना पड़ता है। यह क्या कम दुःख है मगर यह मोही जीव वहांही मौज मानता हैकि मैंने अच्छा खाया। श्वासोच्छ्वास जो निकलता है वह क्या सुखका कारण है? वह भी दुःखका कारण है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

यह कब पता पड़ताकि यहही श्वास जरा जल्दी जल्दी निकलने लगे तो मालूम हो जाताकि कितना कष्ट है। अच्छा और धीरे निकल रहा तो थोड़ा कष्ट है, कोई सुखके संकेत नहीं है ये सब। फिर एक पेट भरनेके खातिर कितना पराधीनताका संगम बनाया जाता है। मित्रजन बनाएँ, परिजन बनाएँ, कुटुम्बीजन बनाएँ, ये अनेक व्यवस्थाएँ बनाते हैं एक पेट भरनेके लिए। और यही तब तक चलता रहता है जब तककि शरीर और कर्मसे मुक्ति न मिल जाए। तो यह संसार रहनेके काबिल नहीं है और इस संसारसे छूटने का उपाय हैतो केवल यही हैकि संसाररहित अविकार स्वभाव वाले अपने सहज आत्मस्वरूपकी आराधना रखेंकि मैं यह हूँ। बाहरमें अन्य कुछ भी होता रहे, वह बाह्यकी परिणति है। मैं अपने आपमें अपनेही स्वरूपको भोगता रहूं। जीवनके दुःख देखलो व्यापार किया, खेतीकी, बड़ा कष्ट उठाया, ऋतुवें बदली ठंड के दिनों में ठंड के कष्ट, उस समय यह मनुष्य कह उठता हैकि इससे तो गर्मी अच्छी है। गर्मीके दिनोंमें गर्मीके कष्ट, उस समय यह मनुष्य कह उठताकि इस गर्मीसे तो सर्दी अच्छी होती है। बरसातके दिनों में घिनावनासा लगता, वहां भी कष्ट मानता और फिर इस जीवन में परके अधीन होना पड़ता है। तो इस समय ऐसे बड़े कष्टसे यह मृत्युराजा हमको निकालने आया है तो इस समय उमंग रखना चाहिए कि भला अवसर मिल रहा है।

कृतघ्नदेहका पक्ष लेने में विमुग्धताका प्रकाशन—यह देह तो बड़ा कृतघ्न है। इसकी कितनी ही सम्हाल करते हैं भोजनसे, आरामसे, लेकिन यह देह क्या मनको शान्ति पहुंचा देता है? यहतो आकुलतामें ही बढ़ाता है, रागको ही उत्पन्न करता है। यह देह कृतघ्न कहा गया है, इसकी बहुत सेवाकी। इस देहको अच्छी तरह उठाया बैठाया, खिलाया, पिलाया, स्नान कराया, निद्रा लिवाई, अनेक आरामके साधन जुटाया, बड़े अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण पहिनाए, रात दिन इस शरीरके ही दास बने रहे, और इसकी सेवा करते हुए मैं अपने भगवान आत्माको त्रास ही देता रहा। इतना तो मैंने इसकी सेवाकी और अब यह देह भय दिला रहा। आत्माको भुला रहा है। ऐसे कृतघ्न देहसे कौन निकाल सकता है? जो इन सबसे बड़ा बलवान हो, ऐसा बलवान राजा है मेरी यह मृत्यु। सो अब उस ज्ञान सहित अपने आपके स्वरूपकी सुध रखते हुए धर्मध्यान सहित, संक्लेश रहित होकर मरण करूंतो मैं भविष्य में इन दुःखोंका पात्र न रहूंगा। इस कारण यह समाधिमरण मेरेको शरण है। यह देह समस्त दुःखोंका देने वाला है। दुःख तोनिश्चयतः यह जीवही अपने आपकी कल्पनासे पाता है, अगर केवल जीवहो इसके साथ, शरीरादिक उपाधि न हो तो क्या इसकी कल्पना जग सकती है? कभी नहीं जग सकती तो इस कल्पना में सहयोगी यह देह बन रहा है। तो सर्व दुःखोंको प्रदान करने वाले इस शरीरपिण्डको दूर करके जो सुख सम्पदा दिलानेका कारण बन रहा है वह मृत्यु मित्र ही तो है। इस मृत्युमित्रके प्रसाद से भविष्य स्वर्ग सम्पदावों में बीतेगा धार्मिक वातावरणमें बीतेगा। पंच कल्याणकों में तीर्थंकरोंके साक्षात् दर्शन में मुझे विलम्ब न रहेगा, ऐसे मरणसे मेरेको हानि क्या है?

मृत्युकी कल्पवृक्षतुल्यता—यह सल्लेखना व्रतधारी अध्यात्मदृष्टिसे, लौकिक दृष्टिसे सब तरहसे चिन्तन कर रहा है और यह निर्णय पा रहा हैकि मृत्युसे मेरा नुकसान कुछ नहीं है। यह मृत्युतो कल्पवृक्ष है। जिस कल्पवृक्षके नीचे पहुंचकर देव अथवा भोगभूमिया मनुष्य जो कुछ सोचते हैं, मांगते हैं वह

http://sahjanandvarnishastra.org/

सब प्राप्त हो जाता है, ऐसे ही यह मृत्यु कल्पवृक्ष है। इस अवसर में हम जो चाहें सो प्राप्त हो जाएगा, पर इस चाहनेसे मतलब क्या? जैसा भाव करेंगे वैसाही फल प्राप्त हो जाएगा। यदि नरकादिक कुगतियों में जाना है तो उसका मौका यही है। मरणसमय में यदि ममता करे, रोए, चिल्लाये तो नरकादिक गतियां बड़े आरामसे मिल जाएँगीं और यदि इसे भविष्य में सद्‌गति प्राप्त करना है तो उसका भी यह मौका है, रत्नत्रय धर्मकी आराधना करे, वस्तुस्वरूपका उपयोग रखे अपने सहज आत्मस्वरूपकी आराधना करे। बाहरके सारे विकल्पोंको छोड़ दे ऐसी स्थिति से मरण होगा तो भविष्य उत्तम हो जाएगा। अच्छे सुख शान्तिके वातावरणका दाता निश्चयमें आत्मा ही है, पर व्यवहारमें निरखिएकि यह मरण समय न आएतो किए हुए तपश्चरणका फल कैसे प्राप्त हो? अरहंत भगवान तीर्थंकर इनका भी मरण होता है, पर उनके मरणको मरण नहीं कहते। निर्वाण, पंडित पंडित मरण कहते। आखिर आयुका क्षयतो होता ही है, वहतो सदाके लिए सिद्ध अवस्था प्राप्त होना, शरीर कर्ममलसे रहित पवित्र बने रहना यह पंडित पंडित मरणके प्रसादसे ही तो प्राप्त होता है।

समाधिमरणमें सर्वतः लाभ—यद्यपि हम यहां साधारण लोग हैं सकल परमात्मा नहीं हैं, सोसिद्ध अवस्था तो न प्राप्त होगी, पर सद्‌भावना रहे, धर्मकी आराधना रहे तो जहां धर्म प्राप्त होता रहे ऐसी गति में, सत्संग में तो जन्म हो जाएगा, फिर वहाँसे मनुष्य बनकर तीर्थंकर होकर या अन्य चक्री आदिक होकर फिर निर्ग्रन्थ मुनि बनकर तपश्चरण करके निर्वाणभी प्राप्त कर लेंगे। पर यदि प्रमाद करके दुर्ध्यान करके अभी ही मरण बिगाड़ लिया और खोटी गति में पहुंच गए तो आगेका फिर विश्वास क्या? यह पाया हुआ समागम बहुत अमूल्य समागम है। इसमें एक क्षण भी दुर्भाव न रखना चाहिए। जीवन बने दूसरेकी भलाईका। दूसरेके द्वारा अपनेको कष्ट भी पहुंचेतो भी उस जीवके सही स्वरूपका चिन्तन करके उसकी भलाई ही सोचिये। जीवन ऐसा सद्‌भाव में व्यतीत हो तो इस जीवनमें भी यह शान्त रहता है और परलोक में भी यह शान्त रहेगा। यह मरण समय उसके लिए सुख शान्तिका ही कारण होगा, जिस मरणके प्रसादसे यह जीर्ण शरीर छूटकर सारा नवीन समागम मिलेगा। वह मरण हर्षके लिए होगा, कठिनाईके लिए न होगा। जैसे मिली हुई सम्पत्तिकी बात लोग सोचते हैंकि हमने इतनी सम्पत्ति कमायी और अब इसे छोड़ रहा हूँ, अरे इतनी सम्पदा छोड़ रहे और कुछ ही सेकेण्ड में इससे हजारगुनी सम्पदा मिलेगी तो सम्पदासे कहां छूटे? वहां विशिष्ट सम्पदा पायी जाएगी? किसी दृष्टिसे हानि क्या है? सद्‌भावसे मरण होगातो इससे लाखगुनी सम्पदा प्राप्त होगी। न कुटुम्बकी हानि है। इस कुटुम्बको छोड़कर जाएंगेसो विनयशील आज्ञाकारी परिजन प्राप्त होंगे। यदि सद्‌भावसे मरणहो तबकी बात है। नहीं तो दुर्ध्यानसे यहां भी मरे, आगे भी मरेंगे।

आराधना सहित मरणसे कल्याणका लाभ—भैया, आत्माराधना सहित मरण होता है तो यह संस्कार विग्रहगतिमें भी रहेगा, जन्म समय में भी रहेगा और जो स्थिति जन्म समय में आ जाती है वह जीवन में भी रहती है। पहले भव में भी पढ़ा लिखा था और पहले भवको छोड़कर इस भवमें आए तो अब फिर चाहे पहले एम०ए०, डबल एम०ए० किया था लेकिन यहां तो फिर से ए०बी०सी०डी० पढ़नी पड़ेगी। वह सब बात कहां गई। वह सब इन्द्रियके साथ, मनके साथ वहीं खत्महो गई, लेकिन यदि वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संस्कार रहा तो इस भव में चाहे ए.बी.सी.डी. से पढ़े मगर उसे विद्या झट आती है। प्रतिभा बढ़ती है, ज्ञान शीघ्र बढ़ जाता है। यह किस बातका अन्तर हैकि क्लास में मानों २० छात्र पढ़ते हैं तो मास्टर सबको एकसा पढ़ा रहा है पर किसी छात्रकी बुद्धिमें बात जरा भी नहीं बैठती, किसीके कम बैठती, किसीके अधिक बैठती और किसीके इतनी बैठतीकि जितना पढ़ाया उससे भी अधिक जानकारी कर ले। यह अन्तर है पूर्वकाल में विद्यार्जनका और धार्मिकताके संस्कार सहित आत्मदृष्टि करते हुए भव छोड़नेका। अपना शरण, अपना साथी केवल सहज आत्मस्वरूपका दर्शन है किसी दूसरेका कुछभी विश्वास नहीं हैकि वह मेरी शक्तिका कारण बन सकेगा। अपने सहज परमात्मस्वरूपकी आराधना में रहे तो यहही मैं ज्ञानमात्र हूं। मेरा जानन रहे इतनाही काम है और इस जानन कार्यके करते हुए जो निराकुलता रहती है वही मेरा भोग है। इससे बाहर मेरा कुछ नहीं है। ऐसा दृढ़ताका भाव जिसके रहता है उसके पवित्रता बढ़ती है। कल्याण उसका होता है। मैं इस मरण समयपर इस सहज आत्मस्वरूपकी ही आराधना करूं, इसही में उपयुक्त रहकर अन्य विकल्प करके इस शरीरको छोड़कर जाऊं, ऐसी उमंग रहती है मृत्युके अवसर पर ज्ञानी व्रती श्रावककी।

सल्लेखनाधारी श्रावकका समाधिमरणके लाभ का चिन्तन—सल्लेखनाके समय में यह श्रावक चिन्तन कर रहा हैकि इस संसार में जन्मे, जीव पाया, जीवन में नाना दुःख भोगे, फिर मरण हुआ। फिर जन्मे, ऐसी धारा कब तक चलेगी? इस धाराके मिटनेमें ही कल्याण है। अनेक कुयोनियों में भ्रमण करते करते आज सुयोगसे मनुष्यत्व पाया जहाँ जैनशासन मिला, जिन-वचनरूपी अमृत कर्णपात्रसे पीनेको मिलते हैं, ऐसे शुभ अवसर में यदि मरण समय में किसी बाह्य पदार्थकी इच्छा रखी तो वही जन्ममरणकी परम्परा लम्बी बन जाएगी। इस जगत में मेरा कहीं कुछ नहीं है। स्वरूपमात्र हूं ज्ञानदर्शनस्वरूप, जानना देखना जिसका कार्य और इसही कार्यके बलसे आनन्दका भोगना वह ही मेरी दुनिया है। इसके अतिरिक्तजो कुछ भी है वह सब कर्मकी छाया माया है, इसमें लुब्ध होनेका कारण ही कुछ नहीं। अज्ञानही कारण होता है। मैं कर्मोंसे निराला, देहसे निराला अमूर्त ज्ञानमात्र हूं मैं। अब मैं इस भगवन्त आत्मतत्त्वकी आराधना करता हुआ ही शरीरको छोडूंगा।

मृत्युमहोत्वसके अवसरपर शाश्वत सहज परमात्मतत्त्वके आलम्बनकी शरण्यता—यह मृत्यु तो कल्पवृक्षकी तरह है। यहाँ समाधिमरण होगातो सदाके लिए कल्याणका तन्त्र हो जाएगा। इस रुग्ण अवस्था में या बड़े कठिन उपसर्गकी दशा में जो देहकी हालत बिगड़ रही है अथवा जो समय बुरा बीत रहा है तो मृत्युही एक ऐसा मित्र है जिसके प्रसादसे यह असातासे छूटेगा, और साताका उद्भव होगा। मैं अविनाशी आत्मा अपने आपकोही देखने वाला यह मैं सर्वत्र निराकुल हूँ। देह में कुछ भी बीत रहा हो, यहतो परद्रव्य है, उसकी परिणतिका मैं ज्ञातादृष्टा हूं। मुझमें और देह में तो महान अन्तर है। मैं चैतन्य प्रकाशरूप हूं। यह देह अचेतन है, मैं अमूर्त हूं, यह देह पौद्गलिक पिण्ड है, मुझ आत्मा में न रोग है, न यह जलता है, न यह गलता है, न बहता है। यह देह जलता भी है, गलता भी है। मुझमें और इस देह में तो अत्यन्त विपरीतता है, फिर इस देहका ख्याल क्यों करूं और इसका ख्याल रखकर क्यों विकल्प संकल्प करूं? यहतो अज्ञानियोंका काम है। जिन्हें आत्माकी कुछ सुध

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

नहीं है और देहको ही आत्मसर्वस्व मान रखा है, उनकोही संक्लेश हुआ करता है। मरण से भय उन्हींको होता है जिनका चित्त संसारके कामों में आसक्त है। ५ इन्द्रियके विषयों में जिनका मन लुभा गया है और इसी कारण इन विषयोंके साधनों में ही जिनका लोभ बढ़ गया है उनको मरण से डर है। मेरातो स्वयं आनन्दस्वरूप है। बाह्य पदार्थोंकी दृष्टि करके जो यह आत्मा अपने धामको छोड़कर बाहर में डोल रहा है सो यह दुःखी ही होता है। विषयों के सुख, सुख नहीं हैं किन्तु दुःख ही हैं। आत्मीय आनन्द जोकि ज्ञानमें ज्ञान ही हो, इस स्थितिको करके अनुभवा है। ऐसे स्वानुभवके आनन्दको निरखने वाले मुझ आत्माको विषयों से क्या प्रयोजन है? मेरा काम अनन्त काल तक यह ही रहता हैकि मैं ज्ञानस्वरूप ज्ञानरूप वर्तता रहूं और इसही ज्ञान स्थिति में निराकुल बना रहूं। इसके सिवाय मेरा और कोई व्यवसाय न होगा। देह और कर्मके बन्धन से छूटकर अनन्तकाल यहही तो करूंगा। जो शुद्ध वृत्ति अनन्तकाल तक रहेगी उसकी प्रतीक्षा, उसकी दृष्टि उसके उपयोग में कष्टका क्या काम?

सल्लेखनाधारी भव्यात्माके अन्तः प्रसन्नताका कारण—यह सल्लेखना व्रतधारी सल्लेखनाके काल में चूँकि ज्ञान और वैराग्य से वासित है अतएव भीतर बहुत प्रसन्न हो रहा है। सहज परमात्मतत्त्वके दर्शन में बहुत बड़ा प्रताप है। यह भव्य आत्मा अपने आपके स्वरूप में बसकर अलौकिक आनन्द भोग रहा है, यह ही अमूर्त तत्त्व है। अमृतका पान करनेसे अमर हो जाता है, ऐसी लोक में रुढ़ि है, पर वह अमृत बाहर कहां मिलेगा? वह क्या पानी सा है? किस प्रकारका होता है वह अमृत? 'मैं अविनाशी सबसे निराला ज्ञानमात्र हूं ऐसे आत्मतत्त्वकी दृष्टि बने यहही वह अमृतपान है जिससे यह अपनेको अमर अनुभवता हूं'। ऐसे जब बाह्य पदार्थोंमें मोह न रहातो मुझ आत्माका कुछ यहां न रहा। वहांमैं ही रहूंगा और अपने आपकी दृष्टिमें भी मैंही रहूंगा। यहतो एक प्रमोदका अवसर हैकि ऐसी जीर्ण शीर्ण हालतको छोड़कर मैं अन्यत्र जा रहा हूं। मैं औपाधिक दुःखोंसे दूर हो रहा हूं। अपने आपको निरखने वाले आत्माके किसी भी प्रकारका कष्ट नहीं होता।

मरण समयमें विषयासक्तचित्तोंके मरणका भय व भेदविज्ञानी संतोंके निर्भयता व प्रसन्नता—अज्ञानीजनही जिनको बाह्य विषयोंमें विश्वास है वे दुःखी रहा करते हैं। खाने पीने विषय भोगनेको ही जिसने सुख माना है। मरते दम तकभी बुद्धि सही नहीं बनती और आस्था यही रहती हैकि विषयोंके भोगने मेंही सुख है। ऐसी अज्ञानवासना में आसक्त पुरुष अपना मरण जानते हैं और दुःखी होते हैंकि हाय मेरा नाश हो रहा। अब यह खाना पीना बिल्डिंग ये आराम, ये परिजन कहां रहेंगे? मरनेके बाद क्या होगा। अब ये मेरे कुटुम्बीजनजो बड़े प्रेमसे बोलते थे वे सब छूटे जा रहे हैं। अब मैं किसकी शरण ग्रहण करूंगा? ऐसा बड़ा संक्लेश करके मरण करता है, किन्तु ज्ञानी जीवतो प्रसन्नताके साथ शरीरको छोड़ रहा है। उसका दृढ़ निर्णय है और इसकी दृष्टि में हैकि जो मेरा सब कुछ है वह सब कुंछ मैं अपने साथले जाऊंगा औरजो मेरा कुछ नहीं है वह कुछ है ही नहीं, पड़ा रहेंतो पड़ा रहे, उसका विषाद क्या? मेरा सब कुछ है दर्शन ज्ञान चारित्र। आत्माके गुण, स्वरूप, वह साथ ही जाएगा। यहां विनाश कहां हुआ? सम्यग्ज्ञानी जीवको मरण समय में विषाद नहीं होता। यह मैं इस जीर्ण, शीर्ण जेलखानेकी देहकुटी में बंद पड़ा हुआ हूं बिल्ला रहा हूं। यहांसे निकलूंगा तो यहाँकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह दुर्दशातो दूर हो ही जायगी। यह मृत्यु मित्रके प्रसादसे हीतो हो रहा है। सत्यस्वरूप जिन्होंने जाना उनको मरण समय मेंभी कष्ट नहीं है। जीवन मेंभी कष्ट नहीं है।

अविकार स्वभाव सहजपरमात्मतत्त्वकी आराधना में वास्तविक आनन्द—आनन्द तो उनके है जिनके भेदविज्ञान जग रहा है। वस्तुका स्वरूप सही समझ रहे हैं। सर्वपदार्थोंकी स्वतंत्र स्वतंत्र सत्ता बिल्कुल स्पष्ट है। जीवनतो उनका धन्य है। यदि विषय आराम भोगके मिलने मेंही जीवनकी सफलता मानी जाय तो गधे सूकरोंने कौनसी और दूसरी बातकी है? वेभी खाते-पीते विषय भोगते, मोह करते, सबकुछ कर रहे हैं। धन्य जीवन तो उनका है जिनको ज्ञानप्रकाश मिला है। ज्ञानप्रकाश मिलना, समग्र चेतन अचेतन पदार्थोंकी भिन्न-भिन्न सत्ताका निगाह में बना रहना यह वह वैभव है जिसकी तुलना तीन लोकके पौद्गलिक ढेर भी नहीं कर सकते। तो संसारके अनेक कष्टोंसे बचाने वाला यह मृत्युराज आया है, जिससे प्रसादसे जीव अनन्त दुःखोंसे छूटकर अनन्त सुखों में पहुंच जाता है उस मृत्युके अवसर पर यह अपने में बड़ी प्रसन्नता रख रहा है अपनेको दृष्टि में लिए हुए, मार्गकी सुगमता बना रहा। अब यह मैं इस शरीरसे जुदा हो रहा हूं, इसको रोकनेके लिए कोई भी समर्थ नहीं हो सकता। कितने भी रिश्तेदार हों, कितने ही मित्रजनहों यह सबसे निराला स्वतंत्र है, अपनेही परिणमनसे परिणमता हुआ अपना कार्य कर रहा है। इस समय आत्मस्वरूपकी दृष्टि ही शरण है। मेरा स्वयं अपने सत्त्वके कारण जो सहज चैतन्यस्वरूप है उसकी आस्था, उसीका उपयोग और इसही उपयोगका बना रहना और इसही शुद्ध स्वरूपमें उपयोगका प्रताप बढ़ाना, यहही मेरी सब दर्शन ज्ञान चारित्र तपकी आराधना है। मैं इन चार आराधनाओं सहित अपने उस सहज आनन्दको भोगता हूँ।

सल्लेखनाधारी श्रावककी निज अचल अन्तस्तत्वमें अचल प्रतीति—सल्लेखनाधारी श्रावक चिन्तन करता हैकि इस मृत्युके सम्बन्ध में पूर्व ज्ञानके उदय से राग आए, कि कठिन व्याधियां आएँ, दुःख उत्पन्न हो, कफ बढ़ गया, शरीर कफ से हिल जाता है, खांसीसे कंप जाता है, ऐसी कठिन भी स्थिति देहकी हो वहां भी मैं अचल आत्मा अपने इस सहज परमात्मस्वरूपमें ही निवास कर रहा हूं, चल में भी अचल हूं। सारा देह चल रहा है, पर यह मैं भीतर तो अचल हूं। मेरा स्वरूप केवल प्रतिभास मात्र है। मैं उसको निरखूँगा। अज्ञानी जीवही देह में तन्मय होकर देहमें रहनेको ही सुख मानते हैं। यह देहजो हाड़का पिंजरा है जिसे लोग तुरंत जला देंगे इस देहसे मेरा क्या मतलब है? मैं मैं हूँ, परिपूर्ण हूं, अविनाशी हूं। आनन्दस्वभाव वाला हूं। मैं यहांसे अलग हूं, कौनसा कष्ट है? यह ज्ञानी अपने आत्माको अपनी दृष्टि में रखता हुआ प्रसन्न रह रहा हैं। यह तो और अच्छा हुआकि इस देह में वेदना राग दुःख हो रहा है। जिससे मैं चेततो पाया। अब इसमें मोहतो नष्ट हुआ, सुख में मोह बढ़ता है। दुःख में मोहके नाशका अवसर आता है। जो बीत रहे बीतने दें, मैंतो उसका ज्ञाता ही रहूंगा। यदि इस अवसर पर चूक जाऊं, संक्लेशमरण करूं, एकेन्द्रिय आदिक में जन्म लूं तो मेरातो चिरकालके लिए अकल्याण हो गया। यों यह सल्लेखनाके काल में रागद्वेष मोहको कृष करता हुआ अपने में अचल ज्ञान प्रकाश को अनुभवता अलौकिक आनन्द पा रहा हूं। जिसे मरण समय में ऐसी आत्मदृष्टि जगती है वह तो लौकिक जनोंके द्वारा पूज्य है। भले ही कोई गृहस्थी में, श्रावकदशा में ही समाधि मरण कर रहा हो पर समाधिमरण

Version

http://sahjanandvarnishastra.org/

करने वालेकी स्थिति आदर्श और पूज्य होती है। मात्र थोड़ेसे कपड़े शरीर पर हैं। उनको भी यह दूर करके मुनिव्रत अंगीकार करता है। नहीं कर सका यह काम इस गृहस्थ पद मेंतो भी इस सल्लेखनाधारीका न कपड़ों में राग है, न कुटुम्ब में राग है, न देह में राग है। उसकी दृष्टि मेंतो अमूर्त ज्ञानप्रकाशही विराज रहा है। जो मैं हूं उसही को मैं जान रहा। यह श्रावक जीवनभर व्रत तपश्चरण करके सदाचारमें बढ़कर अब इस परीक्षाके अवसरमें शुद्धभावोंसे रहता हुआ अपना जीवन सफल कर रहा है।

रोगादिक वेदनाकी स्थितिको भी भलेके लिए मानना—सल्लेखनाधारी श्रावक चिन्तन कर रहा हैकि जो मेरे कोई रोग वेदना हैसो यहतो देहमें ममत्व घटानेके लिए बड़ा उपकार कर रहा है। यदि रोगादिक न होते और बड़े सुख आराममें देह रहतातो देहसे ममता न छूटती और रोग होता हैसो वे पहले बंधे हुए कर्म निकल रहे हैं इसका सूचक है, सो यहतो कर्मनिर्जराके लिए है। जो कर्मबन्ध किया था, जिसके उदयमें रोग होते थे उनका उदय आया, रोगादिकहो रहे हैं तो वे पापकर्मके निकलनेके संकेतहीतो दे रहे हैं, उनसे मेरी क्या हानि? मैं तो अमूर्त ज्ञानमात्र अविनाशी हूं। मेरा विनाश नहीं होता। यदि मुझेजो कुछ वेदना या दुःखहो रहा हैतो वह इस शरीरके सम्बंधसेहो रहा है, फिर इन शरीरोंकी ममता क्यों, जिसके कारण मुझे दुःख पहुंचे? उसमें मोह क्यों हो? मेरी दृष्टितो आनन्दमय ज्ञानस्वरूप आत्मामें हीहो। जैसे लोहे पर कोई चोट मारता, पर लोहेकी संगति से अग्नि पर भी चोट पड़ रही है। केवल अग्नि पर कौन चोट करेगा? ऐसे ही शरीरकी संगति होनेसे मुझ आत्माको वेदना हो रही है, नहीं तो मुझ आत्मामें वेदनाका क्या काम था? मैं आत्मातो अमूर्त हूं। जैसे अग्निसे झौपड़ी जलती है, पर झौपड़ीके बीच का आकाश नहीं जलता, ऐसेही रोगरूपी अग्निसे शरीरका ही नाश होता है, पर इसके बीच रहने वाले मुझ आत्माका नाश नहीं होता। इस समय रोग व्याधिसे कायर बनकर अपने परिणाम बिगड़ेंगेतो मैं कुगति पाऊंगा। जो कर्म उदयमें आए हैं वेतो आए हीहैं, अपने उपजाए कर्मको खुदको ही भोगना पड़ेगा। अब कायर होकर, अधीर होकर भोगेंगेतो वे कर्म न झड़ेंगे और धीर होकर भोगेंगे, तो वे कर्म अपना उदय दिखाकर निकल जावेंगे। विवेक इसीमें हैकि मैं अपने ज्ञानस्वरूप अंतस्तत्त्वको निहारकर इस देह वेदनासे मुक्त होऊं।

मरण व रोगादिककी वेदना में धीरता लानेवाला विज्ञान—मरणतो कोई भयकी चीज नहीं है अब तक अनन्तबार मरण किया। मरण कोई एक नई चीज नहीं है। इसका अभ्यासतो अनन्तकालसे चल रहा है। वह तो आदत बन गई है। उस मरणका भय क्या है? मरे, दूसरे शरीरमें गए, पर अज्ञानवश बाह्य पदार्थोंमें ममता आयी, किसीभी प्रकारका संक्लेश जगे तो उसमें मेरा अकल्याण है। मैं अनेकबार शस्त्रोंसे मारा गया, अग्नि में अनेकोंबार जलकर मरे। बड़े-बड़े उपद्रवोंके बीच मरे। आजतो उपद्रवही क्या है? तोजो रोगादिककी वेदना है उसे मैं धीरतापूर्वक सहूं और उस नियममें रहकर ही इस शरीरसे प्रयाण करूं। क्षुधावेदना होती हैतो यह क्या है? नरकोंमें क्षुधा इतनी हैकि सारा अनाज खालें, फिर भी क्षुधा न मिटेगी, पर एक दाना भी नहीं मिलता। उसके आगे क्षुधा क्या है? वहां इतनी तृषा रहतीकि सारे समुद्रका पानी पी लेंवे नारकी फिर भी प्यास न बुझे, अबतो प्यास ही क्या है, अथवा यह देह है, कभी इसमें तृषाकी बात आती हैतो अपने आपही थोड़ी देर बाद स्वयंही ऐसा परिणमनहो जाता हैकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

वह तृषा नहीं रहती है। इसका क्या अधिक विकल्प करना? अपने संयमको भंग न करना। यदि एक बार भी समाधि पूर्वक मरण हुआ होतातो आज संसारके जन्म मरण ये न सहने पड़ते। मैं समाधिके अवसर पर अपने आत्माको निरखता हूं और अपने आपमें अपनेको स्वाधीन बनाता हूं।

मृत्युकी श्रेयस्करता—सल्लेखना ग्रहण करने वाला श्रावक चिन्तन कर रहा हैकि इस लोकमें मृत्यु जगतमें आताप करने वाली है। मृत्युसे सबको कष्ट होता है लेकिन सम्यग्ज्ञानीके तो मृत्यु निर्वाणके लिए होती है। मृत्यु कष्टदायी है ऐसी प्रसिद्धिजो लोक में है वह सही नहीं है। अगर ज्ञान नहीं हैतो मृत्यु कष्टदायी है। ज्ञानीको मृत्यु अमृतका संग करने वाली है। निर्वाण अमृतपद है। अरहंत भगवानकी आयुका क्षय नहीं होता, तोसिद्ध पद कैसे मिलेगा? भलेही अरहंत भगवानके मरणका नाम पंडित पंडित मरण है, चूँकि उसके बाद जन्म नहीं होता इस कारण उसका मरण नाम भी लिया जा रहा है। पर आखिर आयुका क्षय होना मरण हीतो कहलाता है। तोसकल परमात्माका यह मरण निर्वाण पद देनेका कारण बन रहा है। कहां यह नियम रहाकि मृत्युसंतापको उत्पन्न करता है? यहतो अज्ञान और ज्ञानका फैसला है। अज्ञानमें मृत्युके अवसर पर संताप होता है पर ज्ञानप्रकाश में मृत्युसे कोई संताप नहीं होता। यह घड़ा बनाया गया, सूख गया, कच्चा है अभी, पर उसे अग्निमें पका देनेसे वह घड़ा पक्काहो जाता हैतो कच्चे घड़ेसे कोई पानी नहीं खींच सकता न उसमें पानी भर सकता। अगर वह पक जाए तो अमृतरूपी जलके भरनेके काम आता है ऐसे ही यह मृत्युका अवसर इस आत्माको पकाने जैसा अवसर है। इस अवसर में अगर समताभावसे आताप और वेदनाएँ सहली जाएँ तो यह आत्मा अनन्तकालके लिए निर्वाण लाभ लेकर सही शान्त आनन्दमय रहेगा। जैसेकि अग्निसे पके घड़ेमें बरसों पानी रखते जाइए ऐसेही एक बार भी समता परिणाम सहित सर्व उपद्रव वेदनावोंको सह लिया जाए और इस ज्ञानानन्दस्वभाव अंतस्तत्त्वकी दृष्टि दृढ़ कर ली जायतो इसे आगे निर्वाण प्राप्त होगा।

समाधिमरणका अपूर्व लाभ—इस समाधिमरणके अवसर पर यह एक बड़े लाभका सुगम समय मिला हैकि बड़े बड़े व्रतोंके प्रयास करनेका जो फल प्राप्तहो सकता है वह महाफल इस मृत्युके समयमें समताभावके कारण सहजही प्राप्त हो जाया करता है। लोकमें बड़े पद माने गए हैं—इन्द्रका पद, चक्रीका पद और अन्तिम पद है निर्वाणपद। सो यह पद बड़े घोर तपश्चरणसे प्राप्त किया जा सकता है। सो यदि मृत्युके इस अवसर पर चेतन अचेतन समस्त परिग्रहोंकी ममता छोड़दी जाए और निर्भय होकर अविकार ज्ञानस्वभावकी दृष्टि रखी जाए इस शुद्धस्वरूपका शरण गहा जाएतो ऐसा उत्कृष्ट पद पाकर निकटकालमें मनुष्यभवमें निर्ग्रन्थ मुनिपद धारण कर निर्वाण प्राप्त किया जा सकता है। तो समाधिमरण कितना एक सुन्दर अवसर हैकि एक समता परिणाम ही कर लिया जाएतो महाफल प्राप्तहो जाएगा। इस मरणकालके अवसरमें यदि आत्मरूप परिणाम नहीं हैतो समझोकि दुर्गतिके पात्र हैं और यदि आत्मरूप परिणाम हैंतो समझोकि वह नरक तिर्यञ्च जैसी खोटी गतियांतो पाएगा नहीं। नरक या तिर्यञ्च आयुका बंध कियाहो तो उसके मरण समयमें समताके परिणाम होही न सकेंगे। फिर भी यदि ज्ञानबल है तो वहां भी समताका प्रयास किया जाता है, ताकि कुगति भी मिले तो उसमें भी कुछ वहांके लायक अच्छी स्थिति मिल सकती। तोसमता परिणाम पूर्वक मरण करने वाले जीवको तिर्यञ्चगति,

नरकगति नहीं प्राप्त होती और जोधर्मध्यान सहित अनशन आदिक तपश्चरण सहित समाधिमरणहोतो वह महर्द्धिक देव होगा, इन्द्र होगा, उसके अन्य पर्याय सम्भव नहीं है।

अपूर्वफल पानेका अवसर समाधिमरण—यह सल्लेखनाधारी अपने आपके आत्माको समझा रहा हैकि जो तप तपा है जीवन में, जोव्रत आदिक पाले हैं जीवन में, जो अन्वेषण किया है जीवन में, जो जिनवचन सुना है जीवन में उनका फलतो इस मृत्यु कालमें समाधि द्वाराही प्राप्त होनेको है। बड़े-बड़े तप तपे, बड़े-बड़े इन्द्रिय विषयोंकी वाञ्छा छोड़ी, अनशन आदिक तपश्चरण कियातो इतना महान संयमजो पाला वह अन्त समय में समाधिमरणके लिए हीतो है। यदि यहां समताभाव न रह सकेतो उस व्रतादिके पालनका अर्थ अत्यन्त कम रह जाता। अनेक प्रकारके व्रत पालन किए, रात्रि भोजन त्याग, अभक्ष्यका त्याग, एकाशन, अनशन, आचरण, सारे जीवन मेंजो व्रत पाले हैं और उन व्रतोंके पालनके समय समताभाव भी धारण किया है और आज अब मरणके अवसरपर समता बिगाड़ लूँतो उसका प्रयोजन क्या रहा? सारे जीवनभर संयम कियातो अब उसका लाभ मिलनेका अवसर आया है अर्थात् संयम परिणाम रहनेसे ही मुझे भगवंत परमात्मस्वरूपकी प्राप्ति होगी। बड़े-बड़े ग्रन्थोंका अध्ययन किया। जीव अजीव आदिक तत्त्वोंका परिचय किया, नय विभागसे सर्व वस्तुस्वरूप जाना, जीव और कर्म विषय अनेक घटनाओंका बड़ा ज्ञानसम्पादन किया जीवनमें, उसका फल यह हीतो हैकि मरण समय में समता परिणाम रहे। यदि मरण समय में ममता, डर, विरोध, कायरता, दीनता दूर न कीतो जितना जीवनमें धर्म कार्य किया वह सब निरर्थकहो जाता है। इस चिन्तनसे यह श्रावक सल्लेखनाके अवसर पर अपनी बड़ी सावधानी बनाए है, बारबार अन्तः स्वरूपकी दृष्टि करता है। मैं देहसे निराला अमूर्त ज्ञानमात्र हूं इसकी प्रतीति तो निरन्तर है पर समय-समय पर अनुभूति भी चलती रहती है।

देहसे ममत्व हटानेका एक और चिन्तन—समाधिमरण करने वाला विचार कर रहा हैकि लोक में यह नीति पायी जाती है कि जिसका अत्यन्त अधिक परिचय हो जाए उसमें फिर लोगोंकी अवज्ञा होने लगती है, उसके प्रति गाढ़ प्रीति नहीं रहती है, उससे उपेक्षा होने लगती है। यहां इस शरीरका कितना बड़ा परिचय है, भव-भवमें यह देह मिला, अनन्तकालसे इस देहका परिचय चल रहा है, तब फिर इस शरीरकीतो उपेक्षा करनाही ठीक है। यदि आज यह देह मिट रहा हैतो उसमें डरका क्या काम? और फिर यह जीर्ण शीर्ण शरीर रोगी, वृद्ध, तथा अत्यन्त दुर्गन्ध देने वाली चीजोंसे भरा है ऐसे खोटे शरीरके नष्ट होनेके कारण नवीन शरीर मिलनेके समय क्यों कायरता धारणकी जा रही है। वस्तुस्वरूपका परिज्ञान करके चेतन अचेतन बाह्य परिग्रहोंमें ममताको तज देना और ऐसी अविकार दृष्टि रखकर शरीरसे निकलना इसको कहते हैं समाधिमरण। जिसने समाधिमरण एक बारभी प्राप्त कियाहो उसको निकटकालमें संसारके समस्त संकटोंसे छुटकारा मिल जाता है।

स्वमें स्वत्वकी भावना—सल्लेखना धारण करने वाला व्रती श्रावक चिन्तन कर रहा हैकि इस समय जबकि मैं देहको छोड़करजा रहा हूंतो जोमेरे साथ जाएगा उसकातो मुझे अनुराग है और जोमेरे साथ न जा सकेगा उससे अनुराग करनेसे लाभ क्या? साथ जाएगा मेरा स्वरूप और साथ ही सद्भावना। साथ जाया करते हैं अच्छे बुरे संस्कार और पुण्य पाप कर्म, पर बुरे संस्कार और पापका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

फलतो बुरा है। उससेतो मेरा प्रयोजन ही कुछ नहीं। प्रयोजनतो मेरा एक कारण समयसारसे है अपने स्वरूपसे है। मैं हूं और अपने सहज स्वरूपको लखता रहूं बस इसके फलरूप शुद्ध परिणति होगी। होगी, किन्तु वह मेरे लक्ष्य में नहीं है। वह तो फल है, मेरे लक्ष्य में तो यह एक सहज ज्ञानानन्द स्वरूप रहे। जोसाथ न जाएगा वह क्या है? यह कुटुम्ब, धन, सम्पदा, मित्रजन शरीर ये कुछ भी साथ नहीं जानेके हैं। इनसे मेरा कुछ प्रयोजन नहीं। मेरा स्वरूप क्षमाशील है। ऐसा क्षमाशील अविकार स्वरूपही मेरी दृष्टि में रहे। शान्ति इसकेही स्वके आलम्बन में है, अन्यत्र शान्ति नहीं। अथवा वस्तुस्वरूपका यही तकाजा है, जैसा मैं हूं वैसा ही लखता रहूं, स्वरूपके विरुद्ध कुछ देखेंगेतो उसका फल संसार संकट है। मेरा स्वरूपजो है सोही है। नम्र है, इसमें मान कषायरूप विकार नहीं है। यह विकार सब कर्मकी फोटो है, कर्ममें उदित हुई है, मुझमें झलकी है। अज्ञानीजनही उस झलकको अपना स्वरूप मानकर कषाय करते हैं। वह मेरा स्वरूप नहीं है। मेरा स्वरूप सरल है। वहां टेढ़ मायाचारका कोई स्वरूप नहीं, स्वभाव नहीं। तृष्णा लालचये सब मेरेमें कोई विकार नहीं। मैं यथार्थ ज्ञानानन्दस्वरूप सत् लिए हुए हूं। अपने सत्त्व से हूं। अपने उस स्वरूपमें ही मैं रमूंगा। इस स्वरूपमें रमते हुए मेरे चैतन्यका प्रताप बढ़ेगा। सो वही मेरा वास्तविक व्यवसाय है। अपने आपको मैं ग्रहण करूं, सोजो मेरा नहीं है वह अपने आप छूटेगा। मुझमें कोई बाहरी पदार्थ नहीं है, ऐसा चिन्तन कर यह सल्लेखनाधारी अपने आपके सहज ज्ञानस्वरूपमें रम रहा है।

अन्तस्तत्त्वकी ध्रुवता व शरण्यता—जगतमें जितने भी पदार्थ दृश्यमान हैं वे सब मायामय हैं, विनाशीक हैं। इन सबमें परमार्थतो परमाणु-परमाणु हैं और मुझमें यह मैं चैतन्यस्वरूप परमार्थ हूं। मायामयी वस्तुवोंसे प्रीति करना व्यर्थ है, उससे धोखाही मिलेगा, आत्माको शान्ति नहीं मिल सकती। ये सब विनाशीक हैं। यह मैं सहज आत्मस्वरूप अविनाशी हूं। अविनाशी होकर विनाशीक वस्तुमें लगाव लगाना अज्ञानका काम है। बाहरमें मुझे कुछभी शरण नहीं है, जबमैं अपने उपयोगको अपने स्वरूपसे हटाकर बाहर लगाता हूंतो यही मैं अशरण कहा जाता हूँ। मेरा शरण है मेरा शाश्वत स्वरूप, जोकभी मुझसे अलग नहीं होता। यह मैं उपयोगही कल्पनासे अलगहो बैठता हूं, पर मेरा भगवान परमात्मा ऐसा स्वभाव वाला हैकि मुझसे कभीभी अलग नहींहो रहा। जब मैंने अज्ञानसे पाप किया, भोगोंमें रहातो वहां भी मेरा भगवान आत्मा अलग नहीं हुआ था, पर मैं ही उसे न देख रहा था और मेरे इस अपराधके कारण भगवान परमात्म तत्त्व पर आवरण पड़ा हुआ है। अब मेरेको मेरा भगवत्स्वरूप दृष्टिमें है, बाहर पदार्थोंसे शरणका कामही क्या है?

अन्तस्तत्त्वकी सारभूतता, एकत्वगतता-विविक्तरूपता व शुचिरूपता—मेरे लिए सारभूत पदार्थ केवल मेरा स्वरूपही है अन्य बाह्य पदार्थ रहे वह अपनी परिणतिसे रहेगा। सभी पदार्थ अपनी सत्ता कायम रखनेके लिए निरन्तर परिणमन किया करते हैं। सबका काम उनका उनही सबमें है, उनसे मेरा कुछ भला नहीं है, बुरा भी नहीं है, उनके लगाव में बुरा है, भला नहीं है। अब मैं अपने सद्भूत इस परम पारिणामिक भावरूप सहज चैतन्य स्वरूपको ग्रहण करता हूं। यह मैं सर्वत्र अकेला हूं, स्वरूपमें भी एक हूं बाहरी पदार्थोंमें भी एक हूँ, मेरा कोई साथी नहीं है। सब मुझसे निराले हैं। जब मेरा किसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्यसे रंच सम्बंध नहीं हैतो मैं क्यों अपने स्वरूपसे चिगकर बाहर दृष्टि दूं? मैं पवित्र ज्ञानानन्द शरीरमय अपने आत्माको ही देखूँ। इस देहसे भी मेरा क्या प्रयोजन है? देह न रहे यहतो मेरे कल्याणके लिए है और देह मिलते रहें यह मेरे अकल्याणके लिए है। जब मैं देह पर दृष्टि देता हूँ, अन्य पदार्थोंकी ओर उपयोग लगाता हूँ तो मेरे इस उपयोगके कारण अनेक कर्मोंका आना होता रहता है। आते हैंतो बंधते उसी क्षण हैं और उनमें अनुभाग भी बंधता है अपनी स्थिति पूरी होने पर या पूरी होने से ही पहले कारणवश उनका अनुभाग फूटता है जिससे मेरे इस सहज ज्ञानस्वरूप भगवान आत्माको बड़ी चोट पहुंचती है, आक्रमण होता है इस पर और यह दबा-दबा रहता है, जिसके फलमें संसारमें परिभ्रमण करना होता है। अब मैं अपने इस अविकार स्वरूपको ही निरखता हूँ। यहाँ ही मेरी दृष्टि रहे, यहाँ ही मैं बना रहूं। इसमें मेरी रक्षा है और इसीके प्रतापसे पहलेके बांधे हुए आए हुए कर्म बैरीभी अपने आप दूर हो जाएँगे। सल्लेखना धारण करने वाला पुरुष अपने आपकी स्थितियोंके बारेमें विचार कर रहा हैकि मैंने अनादि काल से अब तक अनन्तकाल अज्ञानमें खोया, जन्म मरण किया। मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चरित्रके कारण लोक में अनन्तबार सर्वत्र जन्मा मरा, अब थोड़ीसी बिन्दु बराबर भूमिपर प्राप्त हुए इन समागमोंमें राग करना, विरोध करना यह बिल्कुल बेहूदापन है। मैंतो अपने स्वभावकोही निरखता हूं जिसके प्रतापसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका विकास होता है। मेरा स्वरूप स्वयं धर्ममय है। स्वभावमें और मुझमें भेद नहीं है। मैं स्वयं धर्ममूर्ति हूं। अतः स्वरूपको निरखकर सल्लेखनाधारी अनुभव कर रहा है। इस धर्ममें, इस आत्मस्वरूपमें कष्टका नाम ही नहीं है, सोमैं कष्टरहित इस अविकार पवित्र ज्ञानस्वरूपमें ही अपने ज्ञानको चेतता रहूं। आत्मस्वरूपमें दृष्टि रखने वाले, रमने वाले पुरुषको अन्तः प्रसन्नता रहती है, वेदना नहीं रहती और कदाचित पूर्वबद्ध कर्मके उदयसे कोई वेदना आयी है शरीरमें रोग हुआ है, कितना ही कठिन रोग हुआ हो, कफ खांसी निरन्तर चल रहे हों, शरीरमें भी ज्वरके कारण एक वेदना मच रही हो। कितनी ही कठिन वेदना हुई हो, ये वेदनाएँ कोई वेदनाएँ नहीं हैं। अपने पुराण पुरुषोंकी वार्ता याद कीजिए, उन्होंने कैसी कठिन-कठिन वेदनाएँ पाईं, वे कभी आत्मस्वरूपसे चलित नहीं हुए।

उपसर्ग विजेता श्री सुकुमाल मुनिकी समता का स्मरण—सुकुमाल महामुनि हुए जोकि गृहस्थावस्था में बड़े सुकुमार थे, बहुत बड़े धनी होनेके कारण सुकुमाल पुत्रसे अधिक अनुराग होनेके कारण उनके माता पिताने उनको बहुत आराम सुविधा दी थी। और यह जानकरकि यह पुरुष विरक्तहो जाएगा किसी मुनिको निरखकर तो बड़े विशाल महल बाग बगीचेके अन्दरही उनको रमनेके स्थान बना दिया था। रत्नोंके दीप प्रकाशमें रात्रिमें उनका आवागमन रहता था। दीपककी ज्योतिको सुकुमाल देख न सकतेथे, आंखोंमें अश्रुआ जाते थे। कमलके फूलोंसे सुगंधित चावलोंकाही भोजन किया करते थे। बिना सुवासित चावल खा न सकते थे। सुकुमाल महामुनिजो गृहस्थावस्थामें सुकुमार थे, वही सुकुमाल जब वैराग्य आया, घरसे बाहर निकले, कोई साधन न थातो धोतियोंकी गांठ लगाकर नीचे लटकाकर ऊपरसे उसके सहारे उतरे। बिना जूतोंके सुकुमाल चले जा रहे। पैरोंसे खूनभी चूने लगा पर प्रसन्न थेवे इस धुनमेंकि संसार, शरीर, भोगोंका लगाव छोड़कर अपने आत्माके सहज आनन्दमय स्वरूपमें प्रीति करके अब मैं कृतार्थ होऊंगा। इस धुनमें प्रसन्न हुए चलेजा रहे हैं, मुनिराज दिखे, दीक्षा ली,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ध्यानस्थहो गए। अब रास्तेंमेंजो उनके पैरके खूनके बूँद पड़े थे। उनके सहारे एक स्यालिनी अपने बच्चों सहित वहां पहुंची। और उस स्यालिनीको सुकुमालसे था पूर्वभवका विरोध, तो उस बैर विरोधके कारण उसे इतना क्रोध आयाकि सुकुमाल महामुनिके पैरोंका भक्षण करने लगी, उसके बच्चे भी भक्षण करने लगे। ऐसे कठिन उपसर्गमें भी उन्होंने धीरता न त्यागी और एक अविचल सहजस्वरूपमें उपयोग रमाकर अविचल रहे, जिसके प्रतापसे वे सर्वार्थसिद्धि गए, जहाँ ३३ सागर पर्यन्त तत्त्वचर्चामें प्रसन्न रहकर वहांकी इतनी स्थिति गुजार कर मनुष्यभव पाकर मोक्ष जाएँगे। तोदेखिए उनपर आया हुआ वह दुःख कितना थाकि उनके शरीरको चीथा, मांस खाया, ऐसी स्थितिमेंजो वेदनाहो सकती है उसके सामने हम आपको क्या वेदना है? कुछभी वेदना नहीं है। और वेदना आएतो उसे धीरतासे सहेंगेतो यह उदय कराएगा। धीरता छोड़कर संक्लेष करेंगेतो यह उदय कराएगा। धीरता में वेदना कम है अथवा नहोगी। समता परिणाम होनेसे सद्गति होगी। उसके कोई कठिन वेदना नहीं है। तोसल्लेखना धारी पुरुष चिन्तन कर रहा है। पुराण पुरुषोंका। जो अपने कुलमें पुराण पुरूष हुए हैंवे हैं अपने सब पुरुखा।

उपसर्गविजेता सुकौशल मुनिराजके अन्तर्ध्यानकी स्मृति—एक सुकौशल मुनिराज हुए। वेजब बच्चेथे तभी उनके पिता कीर्तिधर मुनिहो गए थे मंत्रियोंने बहुत समझाया परन माने, और किसीसे यहभी विदित हुआ यह बच्चा यदि किसी मुनिके दर्शन कर लेगातो यह भी विरक्तहो जाएगा। तोसुकौशलकी मांने यह प्रबंध कियाकि यहां पर कोई मुनि न आ सकेगा क्योंकि यदि कोई मुनि आ गया तो मेरा पुत्र विरक्तहो जाएगा, एकतो मैं पतिसे वियुक्तहो गई, दूसरे अपने पुत्रसे भी वियुक्तहो जाऊंगी, यह सोचकर उसने बड़ा कड़ा प्रबन्ध कर दियाकि वहां कोई मुनिआ न सकेगा। एक बार द्वारपालकी असावधानीसे कीर्तिधर मुनि महलकी सीमामें चर्याके अर्थ आए। उस समय सुकौशलकी मां ने कीर्तिधरको अनेक गालियां सुनायीं और वहांसे उन मुनिको निकलवा दिया। यह देखकर सुकौशलकी धायको बड़ा कष्ट हुआ और उस धायके आंसू आ गए। धायको रोता हुआ देखकर सुकौशलका चित्त भीग गया और कहा मां तुमको क्या दुःख है। अपने दुःखका कारण बताओ? धायभी मांकी तरह होती है। जोदूध पिलाए, बच्चेको पाले पोषे। धाय मांसे कम नहीं है, फर्क सिर्फ इतना हैकि धायके पेटसे पैदा नहीं होता वह बच्चा। तोसुकौशलके बारबार पूछनेपर उसने गद्गद स्वरूपमें सारी बात बता दीकि अभी एक मुनिराज आए थे और जिनको क्षणभर तुमनेभी देखावे तुम्हारे पिता थे, और तुम्हारी मांने उन मुनिराजके प्रति याने तुम्हारेही पिताके प्रति ऐसा व्यवहारकियाकि उनको गाली देकर भगा दिया। उनके इस अपमानको देखकर हमारा हृदय दुःखसे भर आया। सुकौशलको उन मुनिराजके दर्शन करके चित्तमें विरागतातो हुई थी, किन्तु वे मेरे पिता थे, यह जानकर उनकी विरक्तिकी और औरभी तीव्र भावना हुई। और साथही अपनी माताके द्वारा ऐसा अपमान देखकर उनको विशेष विरक्ति बढ़ी। वह सुकौशल उस छोटी अवस्थामें ही घर छोड़कर साधु होनेके लिए चल दिए। जिस समय वह घर छोड़करजा रहे थे उस समय लोगोंने बहुत मनायाकि तुम्हारी अभी किशोर अवस्था है, अभी दीक्षा मतलो मगर जिसको आत्मानुभवका अलौकिक आनन्द आजाता है उसे फिर संसारके कोई विषय नहीं रुचते। मंत्रियोंने कहाकि तुम्हारी रानीके गर्भ है। संतानहो जानेदो, उसे राजतिलक

http://sahjanandvarnishastra.org/

देकर फिर दीक्षाले लेना। तोवहां सुकौशलने यही कहाकिजो भी उदरमें संतान होगा उसीको मैं राजतिलक करता हूं, वही इस राज्यका अधिकारी होगा। और जब तक वह संतान बाहर नहीं निकलता तब तक राज्यकी सारी सम्हाल मंत्रीजन करेंगे। इतना कहकर चल दिये और दीक्षालेली। वह सुकौशल ध्यानमें आरूढ़थे और यहां सुकौशलकी मां संक्लेशमें भरकर व्याघ्री बनी। उसको पूर्वभवके बैरका स्मरणहो गया सुकौशलको ध्यान करते देखकर। उसके बैर उमड़ा और वह सुकौशल मुनिको अपने पंजोंसे चीथने लगी। देखिए उस समय सुकौशल मुनिके लिए कितनी बड़ी वेदनाका प्रसंग था मगर वे आत्मध्यानमें इतना आरूढ़ रहेकि उनको उस वेदनाका भाव तक न हुआ। तो जिसने देहसे अत्यन्त निराले अपने आत्माकी अनुभूतिका आनन्द पाया है, उनका उपयोगतो आत्मस्वरूप परही रमेगा। इतनी बड़ी वेदनामें वे धीरवीर रहे और तपश्चरण कर समाधिमरण कर केवल ज्ञान पाकर मुक्ति प्राप्तकी। तोसुकौशल मुनिके समक्ष यह वेदनाही क्या है, अथवा होवेदना, शरीरकी कुछभी परिणति है, उसका उपाय औषधि नहीं, उसका दुःख देखकर दूसरेसे याचना करना नहीं, केवल एकही उपाय है अपने आत्मस्वरूपकी दृष्टि दृढ़कीजाए। उसही ज्ञानबलके प्रतापसे ये पीड़ाएँ दूर होंगी। आत्मामें प्रसन्नता जगेगी। संसारके संकट दूर होंगे।

उपसर्गविजेता गजकुमार मुनिराजकी धीरताका स्मरण—सल्लेखनाधारी पुरुष अपने उन पुराण पुरुषोंका विचार कर रहा है जिन्होंने अपने उपयोगको आत्मस्वरूपमेंही रमाया और बड़े-बड़े उपसर्गोंके बीच भी वे अपने ध्यानसे विचलित न हुए। यह उपयोग जाननहार है, यह यदि मेरे स्वरूपमें रमेगातो बाहरी पदार्थोंका विकल्प न रहेगा। और कल्याण इसीमें हैकि मैं अपने स्वरूपकी ओरही अभिमुख रहूं। नेमिनाथ भगवानके समयमें गजकुमार मुनिराज हुए थे। वेबहुत रूपवान थे और भरी जवानीके हृष्टपुष्ट पुरुष थे। उनके साथ एक ब्राह्मणने अपनी कन्याका विवाह कर दिया। विवाह हुए कोई एकदो दिन हुएथेकिवे नेमिनाथ स्वामीके समवशरणमें गए, धर्मोपदेश सुना। उनकी आत्मदृष्टि जगी और आत्महितकी तीव्र भावना हुई औरवे तुरन्तही दीक्षा लेकर ध्यानस्थहो गए। ध्यान कर रहे थेकहीं जंगलमें। जब यह सुना उनके स्वसुरनेकि गजकुमार ने दीक्षालेलीतो उनको बड़ा क्रोध उमड़ा, समझाने गए, पर उनने एक न सुना, न उसकी ओर देखा, वेतो अपनेही आत्मामें ध्यानस्थहो गए। यह वृत्ति थी गजकुमारकी। उनके स्वसुर को उस समय तीव्र क्रोध आनेके कारण गजकुमारके सिर पर मिट्टीकी बाड़ लगाकर एक अंगीठीसी बनादी और उसमें कोयला डालकर आग लगा दी। उससे उनका सिर तेज जलने लगा, पर गजकुमार अपने स्वरूपमें ही अविचल थे। जो स्वरूपकी दृष्टिका आनन्द पा लेता है, उसके लिएये सब बाधाएँ सुगमहो जाती हैं। मोहियोंकोतो इस प्रकारकी बात सुनकर आश्चर्य होता है, पर आश्चर्यकी बात नहीं। आत्मध्यानका कुछ ऐसाही प्रतापहैकि उसमेंवे सब बातें सुगमतयाआ जाती हैं। आखिर आत्म ध्यानके बलसे उस ही स्थितिमें उनको केवलज्ञान जगा और उन्होंने निर्वाण पाया। तो ऐसे पुरुषकी ऐसी कठिन पीड़ाथी फिरभी उसमेंवे विचलित नहीं हुए। अपने आत्मस्वरूपमें रत रहे, मैंभी सर्वसंकटोंके बीच अपने आत्मस्वरूपके अभिमुख रहूं और अन्तः प्रसन्न रहूं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

व्याधिसे विह्वल न होनेके लिए सनत्कुमार चक्री जैसे पुण्यवंतोंकी महाव्याधिका

http://www.jainkosh.org

स्मरण—सल्लेखना धारण करने वाला व्रती श्रावक चिन्तन कर रहा हैकि मेरे इस अवसर परजो शरीरमें व्याधि आयी है वह न कुछ चीज है। प्रथमतो मुझ आत्माका इस शरीर और शरीरकी परिणतिसे संबंधही नहीं है। शरीरकी परिणतिका अनुभवन मुझमें नहीं होता है। कुछभी संबन्ध नहीं है और फिर व्याधिका स्वरूप देखा जाएतो न यह कुछ चीज है। पुराण पुरुषोंको कैसी कैसी आपत्तियां आयीं, व्याधियां आयीं जिनमें भी वे नहीं चिगे, तोमैं न कुछ सी व्याधिमें कैसे चलित होऊँ, सनतकुमार महाराज हुए पहले जिनके रूपकी प्रंशसा स्वर्गोंमें भी इन्द्रसभामें होती थी। जैसे यहाँ प्रवचनसभा होती है और श्रोता सुनते हैं ऐसेही स्वर्गमें भी प्रवचन सभाएँ होती हैं और उनमें मुख्य वक्ता इन्द्र होता है, इन्द्रका नाम वृहस्पति भी है। तोएक बार सभामें सनतकुमार महाराजके रूपकी प्रशंसाकी चर्चा चल रही थी। दो देवोंने सोचाकि परीक्षातो करें-देखेंतो सहीकि कैसा रूप है। सो दो देव आए। वेउस समय आए सुबहके समय जबकि अखाड़ेसे व्यायाम कुस्ती करके नहानेके लिए बैठे हुए थे। उनके शरीरमें कहीं-कहीं धूलभी लगीथी। जबवे देव आएतो उनका अद्भुत रूप देखकर, कांति और रूप देखकर बड़ी प्रशंसा करने लगेकि स्वर्गमें जैसी प्रशंसाहो रही थी वैसाही रूप महाराजका है। किन्तु वहांके मंत्री, बाडीगार्ड वगैरहने बतायाकि अभीतो ये अखाड़ेसे आए हैं, धूलसे धूसरित हैं। अभी इनका क्या रूप देखते। जबये खूब सजधजकर राजसिंहासन पर बैठेहों तब देखिए इनका रूप कैसा है। तोवे देव पुनः उस वक्तभी आए जबकि सनतकुमार खूब सजधजकर राजसिंहासन पर बैठेथे। तोउस समय उन्हें देखकरवे अपना माथा धुनने लगे और कहने लगेकि अबतो इनमें वह रूप नहीं रहाजो उस समय था। देवोंकी ऐसी बात सुनकर वहां बैठे लोग बोले—वाह आप लोग यह क्या बात कह रहे। तोउन देवों ने एक दृष्टान्त देकर समझाया—एक घड़ेमें पानी भरवाया और उसमें सींक डालकर एक बूंद पानी घड़ेसे निकालकर बाहर डाल दिया और पूछा बताओ घड़ा कुछ खाली हुआकि नहींतो लोग तो बोलेकि अभी घड़ा खाली नहीं हुआ, ज्योंका त्यों भरा है। पर देवोंने समझायाकि भलेही मोटे रूपसे देखने पर कुछ न विदितहो पर कुछ न कुछतो पानी कमहो ही गया। फिर बतायाकि जैसे एक-एक बूंद पानी निकल निकलकर घड़ेका पानी कम होता जाता है ऐसेही जीवनका एक-एक क्षण ज्यों ज्यों निकलता जा रहा है त्यों-त्यों शरीरका बल, रूप, सौन्दर्य आदि सब कम होता चला जा रहा है। दूसरी बात यह हैकि कोई यदि बिना श्रृंगार किए अचानक बैठाहो तोजो सुन्दरता उस समय होती है वह सुन्दरता बनावट करके नहीं होती। खैर यहां कथानकतो यहींका यहीं रहा। येही सनतकुमारजो इतने रूपवान थे जब मुनि हुएतो इनको कुष्ट वेदनाहो गई। अब कोढ़ होनेपर शरीरकी बात सोचिए कैसी होती है। बोझहो जाता है शरीर उसके लिए। लोग उसे देखकर घृणा करने लगते। उस समय भी देव आए परीक्षा करनेके लिएकि देखेंतो सहीकि कितना सावधान है। उस समय १०—१२ बार चक्कर लगाते हुए बोलते थेकि मैं वैद्यराज हूं, मेरे पास सब रोगोंकी अचूक दवाई है। जब १०—१२ चक्कर लगायातो सनतकुमार ने सोचाकि ये लोग मुझे दिखानेके लिए ऐसा कर रहे हैं। बुलाया पासमें और कहा—आपके पास कौनसी दवाई है? तोउन्होंने बतायाकि मेरे पास सब रोगोंकी अचूक औषधियां हैं जैसे कुष्ट, कैन्सर आदि। बताओ तुम्हें क्या रोग है? तो सनतकुमारने कहाकि मेरे जन्ममरणके चक्रका विकट रोग लगा है उसके मिटनेकी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

औषधि यदि आपदे सकेंतो दे दीजिए। तोवहां वह देव चरणोंमें लोटकर बोला—महाराज माफ कीजिए, मैं यह दवादे सकनेमें असमर्थ हूं। मैं वैद्य नहीं हूं, मैंतो देव हूं। मैंतो तुम्हारी परीक्षा लेने आया था, सचमुच मैंने आपको व्रत, तप, आदिकमें अत्यन्त सावधान पाया। तोऐसे ऐसे बड़े कठिन रोगोंमें भी हमारे पुरखा विचलित नहीं हुए। तोउनके सामने हम आपकोतो कुछभी कष्ट नहीं है।

कलिकालसर्वज्ञ श्रीसमन्तभद्राचार्यकी घटनाओंका स्मरण—यहां समाधिमरण करने वाला पुरुष अपने आपको ऐसा सम्बोध रहाकि शरीरसे दृष्टिही हट जाए। जिनके ज्ञान नहीं होता उनको लौकिक हिसाबसे कष्ट भी न हो तो भी ये निरन्तर कष्टमें रहते हैं। जिनके ज्ञान होता हैवे लौकिक कितनेही कष्टमें रहेंतो भी उनके चित्तमें प्रसन्नता रहती है। बड़े-बड़े पुरुष ज्ञानबलके ही कारण विचित्र परिस्थितियोंमें भी गुजरे परवे अपने सम्यक्त्वसे नहीं बिगड़े। सम्यग्दर्शनही मुझ आत्माका वास्तविक साथी है। जोइस समयभी मदद करता है और आगे भी मदद करेगा। समन्तभद्र मुनिराज हुए हैं बड़े दिग्गज विद्वान। उनको कलिकाल सर्वज्ञ कहा जाता है। जब उनके न्याय शास्त्रोंका कोई अध्ययन करेतो कुछ परिचयहो पाताकि उनमें कितनी विद्यानिधि थी। आज अष्ट सहस्री ग्रन्थ प्रसिद्ध है, तो जिन कारिकाओं पर अष्टसहस्री टीका बनी, अष्टशती टीका बनीवे कारिकाएँ समन्तभद्र स्वामीकी रचित हैं, जिनमें छोटे-छोटे श्लोकोंमें थोड़ेसे संकेतमें सैंकड़ों दर्शनशास्त्रोंका इतना भण्डार भरा हैकि उसके विस्तारमें कितनीही टीकाएँ होती चली जाएँ। अचानकही भस्म व्याधि रोग हो गया, जितना चाहे खा जाएं सब हजम होता जाए, मन, दोमन, चार मन खाएं, बड़ी कठिन वेदना फिरभी भूखकी भूख। उस समय संमतभद्र मुनिने अपने आचार्यसे प्रार्थनाकीकि मैं अब समाधि मरण चाहता हूं। आचार्य जानते थेकि इस समय समन्तभद्र मुनिके सिवाय कोई विद्यानिधि नहीं हैजो जैन धर्मकी प्रभावना कर सके और हमारे ज्ञानका प्रकाश कर सके। तब उनको आदेश दिया आचार्यनेकि आपको समाधिमरणका आदेश नहीं दियाजा सकता। और आदेश आपको यह हैकि आप कोई सा भी भेष रखले किसी संन्यासी वगैरहका जब तककि रोग न मिटे, पश्चात् आपको दीक्षादे दी जाएगी। गुरुका आदेश मानना पड़ा। आखिर कुछ दिन समन्तभद्र संन्यासीके भेषमें रहे। क्या किया उन्होंनेसो सब आप सबको विदितही है, और अन्तमें उन्होंने वृहत्स्वयंभू स्तोत्र रचा, जिनमें हैतो २४ तीर्थंकरोंकी स्तुति मगर वहांभी दर्शनदृढ़ता उन श्लोकोंमें पायी जाती है। और राजाने जोकि अप्रसन्नहो गया था उसने तीर्थंकरके सिवाय अन्य मूर्तिके सामने नमस्कार करवाया उस मूर्तिको, उस पिण्डीको सांकलोंसे जकड़ दिया मगर जब स्तोत्रको पढ़ातो ७ तीर्थंकरोंकी स्तुति तक उन्होंने नमस्कार शब्द नहीं बोला। स्तवन होता रहा, दार्शनिक वर्णन चलता रहा, पर चन्द्रप्रभुका स्तवन करते समय वंदे शब्द कहातो उसी समय सांकल टूटी और चन्द्र प्रभुकी मूर्ति प्रकट हुई। ऐसे बड़े दिग्गज विद्वान कलिकाल सर्वज्ञ जैसे मुनिराजको भी व्याधिने छोड़ा नहीं। उन बड़ी व्याधियोंके सामने क्या व्याधि है, ऐसा निरख रहा है यह सल्लेखना व्रतधारी।

उपसर्गविजेता पञ्चशत मुनिवरोंकी समताका स्मरण—बहुत पुरानी एक घटना हैकि दण्डक वनमें ५०० मुनिराज आए हुए थे, राजाने नमस्कार किया, मंत्री साथ थे। मंत्रियोंको किसी बातपर रोषआ गया। कहीं वाद-विवाद करते हुएमें हार गएतो उस क्रोधमें आकर उनने पहले सोचाकि इन मुनियोंको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कैसे मरवाया जाए? होते होते एक उपाय उन्हें सूझा। एक भांडसे कहाकि तुम मुनिका रूप रखलो, नग्नहो जावो, पिछी कमण्डलले लो और रानीके महलमें जाकर उससे कुछ वार्ता करो। सो वैसाही किया उस भांडने। तोउस मंत्रीने राजाको प्रत्यक्ष दिखायाकि देखो जैन मुनि इस तरहके निर्लज्ज होते हैंजोकि रानियोंसे एकान्तमें वार्ता करते हैं। तो यह दृश्य देखकर राजाको गुस्सा आया और ५०० मुनियोंको घानीमें पिलवा दिया। अब भला बतलावो घानीमें पेले जानेपरतो हड्डियांभी चूर-चूरहो जाती हैं। तोउस समय भी मुनिराजने अपनी धीरता नहीं त्यागी और आत्मध्यानमें सावधान रहे। तोउनके सामने हम आपको रोगकी वेदना क्या है? मरण समय, रोग वेदनाके समय यदि जीवोंकी दृष्टि अपने चैतन्यस्वरूपकी ओर आएतो वह कृतार्थहो जाता है। संसारके संकटोंसे छूटनेका उसने यत्न कर लिया। बाहरका कुछभी पदार्थ संग साथी नहीं है। यह देहभी साथी नहीं है। जिसे कुछही मिनट बाद लोग श्मशानमें जला डालेंगे। उस अत्यन्त भिन्न देहका विकल्प क्यों करना? मरण समय आहार योग्य रखेंतो कफ खांसीका रोग न बढ़ेगा। सब रोगोंसे बुरा रोग है मरण समयमें तोयह खांसी वाला रोग है। कहनेकोतो बहुत छोटा है जिसमें देह हिल जाता है। मरण समयमें जोआहारका त्याग सम्हालनेमें भी बहुत ऊंची चीज है। अपनी ऐसी सावधानी रखता हुआ कोई कठिन रोग आ जाएतो उस रोगको भी एक शरीर का सम्बन्ध जानकर, अपनेसे भिन्न जानकर उसकी उपेक्षा करता है।

उपसर्गविजेता सप्तशतक मुनिवरोंकी धीरताका स्मरण—सल्लेखनाधारी अपने पुराण पुरुषोंके उपद्रवोंका चिन्तन कर रहा जिनमें वह धीर वीर रहता है। ७०० मुनि अकम्पनाचार्यके संघके आचार्यसहित हस्तिनापुरमें थे, जिनको बलि मंत्रीने अपने पहले विरोधके कारण ७ दिनका राज्य लेकरजो उपसर्ग किया वह दिलको कंपाने वाला उपसर्ग है। धर्मकातो रूप रख लिया, पर वह धर्म नहीं, वहतो कुधर्म है। यज्ञका बहाना किया और ७०० मुनियोंके चारों तरफ बाड़ लगाकर भीतर कूड़ा-कचरा हड्डी ऐसी गंदी चीजेंभी फैंककर आग लगादी और यज्ञमें किमिच्छुक दान दिया। मांगा हुआ राज्य था। पीछेतो राजा बनकर रहना न था। सब खजाना लुट जाएतो उनको क्या परवाह? ऐसा ढोंग रचकर जो ७०० मुनियों पर उपद्रव कियागया वह दिलको हिला देने वाली घटना है। उस समय भीवे मुनिराज अपने ध्यानसे विचलित नहीं हुए। सहज परमात्मस्वरूपके ध्यानमें उन्होंने और अधिक दृष्टिकी। आखिर विष्णुकुमार मुनिकी कलासे वह उपसर्ग बचा और उपसर्ग निवारणके बादवे सब मुनि आहारको भी गए। श्रावकोंने जल्दी कंठसे निगल जाएँ ऐसा आहार बनाया, पर देखिए कितना घोर उपद्रव सहा। उस उपसर्गके आगे मेरे व्याधि आदिकका कौनसा बड़ा उपसर्ग है जिसमें मैं विकल्प करूं? इन विकल्पनोंसे हटकर आत्मस्वरूपकी ओरही अभिमुख होना मेरा कर्त्तव्य है।

उपसर्गविजेता पाण्डवोंका स्मरण—उपसर्गोंमें उपद्रवोंमें अनेक पुरुषोंके प्राण गए, पर जिन्होंने संक्लेश किया उनको कुगति हुई और पाए हुए दुर्लभ मनुष्यजन्मको व्यर्थ खोया और जिनके सद्भाव रहे उनकी सुगति हुई। उन्होंने इस दुर्लभ मनुष्यजन्मको सफल किया। नेमिनाथ स्वामीके ही तीर्थमें कृष्ण कौरव पांडव आदिक हुए। घटनाएँ बड़ी-बड़ी विचित्र थीं, अन्तमें विरक्त होकर पांचों पाण्डव तपश्चरणमें जुट गए। दुर्योधन के रिश्तेदारों ने सोचा वे मुनि बनकर अब कहां जाएँगे? पता लगाऊंगा,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जहाँ मिलेंगे वहीं उनकी खबर लूँगा। पता लगाते-लगाते वहां पहुँचे जहाँ पाँचों पाण्डव तपश्चरण कर रहे थे। कायोत्सर्गसे आत्मध्यानमें थे, वहां उन रिस्तेदारोंने क्या कियाकि अनेकों प्रकारके लोहेके आभूषण बनाये, उनको अग्निमें खूब तपाया और संडासियोंसे पकड़-पकड़ कर उनके सारे अंगोंमें उन्हें पहनाया, हाथोंमें पहनाकर कहाकि लो ये कड़े हैं, पैरोंमें पहनाकर कहाकि लो ये चूरा है, गलेमें पहनाकर कहा—लो ये हार हैं। कमरमें पहनाकर कहा—लो यह पेटी है··· यों सारे अंगोंमें अनेक तेज गरम लोहेके आभूषण पहिनाए। अब जरा विचार तो करो कि यह कितने कष्टका प्रसंग है। इतने परभी वे मुनिराज अपने आत्मध्यान से नहीं चिगे। हां उनमेंसे दोको (नकुल और सहदेव को) थोड़ा उसके प्रति विकल्प चला जिससे वे दो तो मरणकर सर्वार्थ सिद्धि गए और तीन पांडव (अर्जुन, भीम, युधिष्ठिर) मोक्ष सिधारे। तो ऐसे बड़े-बड़े कठिन उपसर्गोंको ऐसे-ऐसे महापुरुषोंने जीता तो उनके सामने हम आपको कौनसी वेदना है? इस सल्लेखनाधारीके बाह्य वस्तुओंमें ममताका तो नाम न रहा। जोज्ञानी होता उसके मरण समय पर किसीभी चेतन या अचेतन पदार्थमें कर्मत्व नहीं रहता। एक तो उसका तत्त्वज्ञान, दूसरे मरण समयकी स्थितिका ऐसाही प्रभाव होता है, कुछ देहकी वेदनाएँ ऐसीहो जाती हैं कि जिनसे विकल्प बन सकता है। सो यह श्रावक उन देह वेदना सम्बन्धी विकल्पोंसे हटनेके लिए पुरुषोंके उन उपसर्गोंकी घटनाएँ याद कर रहा। ऐसे अनेक उपसर्गोंमें समता रसका स्वाद करने वाले धर्मात्मा हुए हैं।

साम्यभावरूप शकुनके साथ ज्ञानीका देहसे प्रयाण—मेरा शरण अन्य कुछ नहीं है। सम्यक्त्व ज्ञान, चारित्र और तपकी आराधनाही मेरा शरण है। इस दुष्ट देहको मैं क्या निरखूँ, इसमेंजो कुछ होताहै सोहोने दो। ऐसी दुष्ट कृतघ्नता ऐसीही दशामें हुआ करती है। मैं अपने आपके स्वरूपमें ही अविचल रहूंगा। यहतो मरण समय उन व्याधियोंका मुकाबला करनेकी होड़ कर रहा है। जिसको एक रास्ता मिल गया अपने आपके स्वरूपमें प्रवेश करनेका उसके लिए सब मार्ग खुला हुआ है। येतो सब शकुनकी बातें हैं। असगुनतो रागद्वेष मोह है। असगुनतो कुटुम्बीजनोंका राग, स्नेह, रोना, खेद यह है। रोग आयातो क्या, जहां जिन वचन अमृत, कर्णको सुननेको मिल रहे हैं, जिसमें चिदानन्दस्वरूप भगवान परमात्माकी सुध हो रही है वह वातावरणतो सगुन है। कोई जीव कुछ दिनको ही विलायत जाए या थोड़ा परदेश जाए, बाहर जाएतो लोग सगुन करके भेजा करते हैं। तोजो इस शरीरसे सदाके लिए प्रयाण कर रहा है उसको सगुनके साथ भेजना चाहिए, वह सगुन है धर्मध्यानका वातावरण। धर्मध्यान वहीतो सगुन है जिसके प्रतापसे अगली यात्रा बहुत अच्छी होगीही, इसमें कोई संदेह नहीं। परिणाम आत्मतत्त्वकी ओर रहे, शुभ ध्यान रहे, ज्ञायकस्वरूपही जिसके ज्ञानमें बसे, इस तरहसे मेरा मरणहो समझो ऐसे मरणका जो साथी बने वह है मेरा असली मित्र। तो कोई कुटुम्बीजन विषाद करते हैं तोवे मेरे इस समय दुश्मन बन रहे हैं, सदाके लिए मेरा भविष्य बिगाड़ रहे हैं। इस ज्ञानी श्रावक सल्लेखनाधारीको किसीभी परतत्त्वमें ममता न रही। अब मैं निशल्य होकर एक ज्ञानानन्दस्वरूप आत्माका ही ध्यान करता हूं और इस मृत्यु मित्रका बड़ा उपकार मानता हूं, जो इस अवसर पर मेरी आन्तरिक भावनाभी निर्मल हो रही है और भविष्यमें मैं धर्मका वातावरण पाऊँगा, ऐसा उपाय बन रहा है। यों सल्लेखना व्रतधारी श्रावक अपने आत्मतत्त्वकी दृष्टि रखता हुआ प्रसन्न बना हुआ है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

स्वभावदृष्टि रखनेवाले ज्ञानीकी दृष्टिमें विकारचेष्टावोंका मिथ्यापरा—सल्लेखना धारण करने वाला यह ज्ञानी अपनी पूर्वकृत चेष्टावोंका और स्वभावका चिन्तन कर रहा है। जो चेष्टाएँ हुई मन, वचन, कायकी वे सब मेरा स्वरूप न थीं, स्वभाव न थी। वह सब कर्मका प्रतिफलन था और वास्तविकमें मैं सहज ज्ञानानन्द स्वरूप उन सब चेष्टावोंसे निराला हूं। स्वरूपदृष्टिसे देखने पर यही विदित होता हैकि वे सब चेष्टाएँ मिथ्या थीं, मायारूप थीं, परमार्थ न थीं, सोवे सब पाप मेरे मिथ्या हों। स्वभावदृष्टि मेरी दृढ़हो। जोकुछ भी अब तक अनादिसे संसारमें भ्रमण करते हुए चेष्टाएँ हुई हैंवे सब गुप्तिके बिना हुई हैं। मैं मन, वचन, कायको वश न कर सका। वश करने का उपाय सहज आत्मस्वरूपमें आत्मत्व मानना था। वह उपाय न बन सकातो मन, वचन, कायकी चेष्टामें स्वच्छंद बना, वेसब मेरे स्वरूपकी चीज न थी। वेसब मिथ्या हुईं अर्थात् मायामय थीं। उनसे हटकर अबमैं अपने स्वरूपकी ओर लगता हूं। अब तकजो चेष्टाएँ हुई हैंसो क्रोध, मान, माया, लोभके वश होकर सारी चेष्टाएँ हुईं। भला जगतमें कौनसा जीव मेरा विरोधी है, कौनसा जीव मेरा शत्रु है? लेकिन अज्ञानसे क्रोध, मान, माया, लोभके वश होकर मैं कल्पना कर रहाकि यह पुरुष मेरा विरोधी है। यह मेरा शत्रु है, ये सब कल्पनाएँ कर रहा, ये सब पापकर्मही किया। जोमेरे स्वभावमें न था, विभावरूप हैं उनका कर्ता रहा। अब दृष्टिमें आया अंतस्तत्त्व, इसके प्रसाद से, इसकी दृष्टिके प्रसादसे सब मिथ्याहो रहे हैं। अब उनके करनेकी मेरे भावना नहीं है। कभीभी इन विकार चेष्टावोंको न करूंगा।

पूर्वभूत दुष्कृतपर विषाद और दुष्कृतसे हटकर स्वभाव मग्न होनेकी भावना—यह सल्लेखना व्रतधारी अपने किए हुए अज्ञान चेष्टावोंपर विषाद कर रहा है और अन्त: स्वरूपको निरखकर उस समस्याको सुलझा रहा है, वह मेरा कुछ न था। अज्ञानमें क्या-क्या चेष्टाएँ हुईं? कहीं ऐसी क्रूरता आयी किसी भवमें कि जीवोंकी हिंसा जान-जानकर कर रहा । कितनी बेहोशी थी? वह बेहोशी भी मेरे स्वभावका काम न था, वह भी कर्मका प्रतिफलन था। जब तक कर्मविपाकमें और अपने स्वभावमें भेद न जान पाया था तब तक मैं अन्य कुछ बनता रहा। और इस तरह संसारमें भ्रमण करता रहा। हेप्रभु, हेवीतराग सर्वज्ञदेव, तुम्हारी आराधनाके प्रसादसे बड़े-बड़े पापी तिर गए, अंजन चोर जैसाजोकि वेश्यागामी था, चोर था वहभी आपकी आराधनाके प्रसादसे न भी शुद्ध णमोकार मंत्र जप सका, अशुद्ध जपा लेकिन लगन होनेसे वह भी धीरे-धीरे मार्ग पाकर तिर गया, सभीजीव पापीही रहेंतो रहें संसारमें। जो सिद्ध बने हैं वेभी पापीही थे, संसारमें रुलने वाले थे, उन्होंने आत्मदृष्टि पायी, सन्मार्ग पाया और आत्ममार्गमें लग गए। सिद्ध हो गए, तोहे प्रभु, तुम्हारी आराधनाके प्रसादसे मेरी यह आत्मदृष्टि इतनी दृढ़ रहे, जिसके कारण संसार संकटोंसे सदाके लिए छूट जाएँगे। यह देहतो बन्धन है। देहको मैं रंचभी नहीं चाह रहा हूँ मुझे शरीर आगे मत मिले। यह शरीर मेरा मिटे। अन्य किसी पदार्थके सम्बंधसे मेरेको प्रयोजन नहीं।

अपराधसे हटकर निरपराध रहनेकी भावना—समाधिमरणके अवसर पर जिसको अब विवेक मिला है उसका विवेक बढ़ता जा रहा है, उसकी विरक्ति वृद्धिंगत होरही है, वह आत्मस्वरूपमें ही रमना चाह रहा है। जो अपराध किया है अब तक, वह सब अपराध क्या था? अपनी दृष्टिसे चिग जाना।

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपराध शब्दमें दो शब्द है, अप व राध। राध धातु सिद्धि अर्थ में है। अप उपसर्ग विलगाव अर्थमें है। जहां सिद्धि न रहे उसे अपराध कहते हैं। समस्त पाप क्यों अपराध हैं? क्योंकि उन पाप प्रवृत्तियोंमें इस जीवको अपने स्वरूपकी सुध नहीं रहती। सोजो जो प्रमादवश मुझसे पाप हुए, घने पाप हुए सो अब प्रभुके गुणस्मरणके प्रतापसे अपने सहज आत्मस्वरूपके स्वभावकी आराधनासे सब मिथ्या हो वो यह जीव कुछ नहीं चाह रहा। जोसमाधिमरणकी विधिमें चल रहा है, केवल आत्मस्वरूपका दर्शन, अपने आपका ऐसा अनुभवनकि यह मैं ज्ञानमात्र हूँ। अपने स्वरूपको भूलकर नाना तरहके विकल्प किया, मैं उसकी निन्दा करता हूं। मैने भला नहीं किया। यह निन्दा और प्रायश्चित्तभी धर्म है, जब तक स्वरूपदृष्टि नहीं आती है जबतक अपने कसूर नहीं मालूम होते। तब तक अपराध अपने आपको विदित नहीं होता जब तक अपनी चेष्टाकी निन्दा नहीं करता। मैं उन सब अपराधोंकी निन्दा करता हूं और उनसबसे हटकर धर्मउपार्जन करके अब मैं स्वरूपमें मग्न होऊँगा।

आत्मतत्त्वकी उपासनासे प्राप्त सुयोगकी सफलता—आजजो दुर्लभ समागम पाया है मनुष्यभव, उच्चकुल, इन्द्रियकी पूर्णता, गुजारेकी सुविधा, सत्संगति, जिनधर्मकी श्रद्धा, जिन वचनका पढ़ना, सुनना, ये दुर्लभ समागम पाए हैं। यदि इन समागमोंको पाकर भी मैं अपने आपके स्वरूपको न सम्हाल सकातो वह जीवन धिक्कार है, यह जीवन व्यर्थ है। जैसे किसी कार्यके सारे साधन जुटानेके बादभी उस कार्यके साधनके फलसे मुख मोड़लें तोवह उसकी मूढ़ता है। परदेशमें जाकर खूब धन कमाकर धनके साथ घरके लिए चले और गांवके निकट कहीं भी योंही फेंक दिया या लुट गयातो उसका सारा कमाना व्यर्थ रहा, ऐसेही आजजो सर्वसमागम पाए हैं उन समागमोंको पाकर यदि हम आत्मदृष्टिमें न बढ़ सकेतो येसब साधन पाना व्यर्थ हीतो रहा। इन्द्रियमें आसक्त होकर विषयोंकी प्रीतिही बढ़ायी, तोमैने जोकुछ निधि पायी, सत्संगति समागम पाया वह सब हमनेखो दिया। ऐसा दुर्लभ अवसर क्या बारबार मिलता है? केवल एकही दृष्टि होनी चाहिएकि मुझे आत्मधर्म जानना है और आत्मस्वभाव रूपही अपनेको मानना है, यह मैं हूं विशुद्ध ज्ञानानन्द स्वरूप, अब उपयोग ऐसाही बना रहेतो इसके प्रसादसे सर्वकल्याण होगा। विशेष जानकारी नहीं है, नहीं जानते हैंकि किन गुणस्थानोंमें किस तरह कर्म खिरते हैं लेकिन इसकेतो खिरनेही लगेंगे। नहीं जाना मगर कामतो बना। जो अपने को अपनेही सत्त्वके कारण सहज स्वरूपही उस रूपही अपनेको मानलेतो उसके वे सारे कार्य बनते हैं। कर्म बिगड़ना, विशुद्धि बढ़ना, वीतरागता प्रकट होजाये सारे कार्य स्वयं होते हैं, जिनका वर्णन ग्रन्थों में लिखा है, और बड़े-बड़े पंडितजन जिसका व्याख्यान किया करते हैं। वह स्वयं यहां प्रयोगात्मक बन जाएगा। उपाय केवल एक ही करना हैकि मैं अपने सहज स्वरूपको जानूँ और इसही जाननमें संतुष्ट रहूं।

सल्लेखनाधारीकी समता व क्षमा—मैं निज स्वरूपको देखता हूंतो यही स्वरूप सब जीवोंमें है। सब जीव अपने हैं अर्थात् स्वरूपके समान हैं। इन जीवोंमें कोई ऐसी छांट नहीं है स्वरूपमेंकि ये मेरे कहलाएँ औरये पराये कहलाएँ। येविरोधी कहलाएँ और येमित्र कहलाएँ। ऐसी जीवोंके स्वरूपमें छांट नहीं है। सब जीव मेरे स्वरूपके समान हैं। सब जीवोंके प्रति समता भाव जगा है। मैं अपने समताभावमें ही बढ़ूँ और समताकी वृद्धिके लिए संयमाचरण करूं। जितना बाह्य पदार्थोंसे हटकर अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आपकी ओरही नियंत्रित होऊंगा समताके भाव वहांही विशेष बढ़ते चले जाएँगे। किसी जीवको मेरे द्वारा कभी कष्ट पहुंचाहो, किसी जीवके प्रति कषाय भीकी हो, वह सब अज्ञान चेष्टा थी। जो कष्ट पहुंचाहो, जगतके सर्वजीव मुझे क्षमा करें। स्वरूपदृष्टिसे यह सल्लेखनाधारी सर्व जीवोंमें एक समान बुद्धि रख रहा है। जगतके समस्त बाह्यपदार्थ सब एक समान हैं, जीव जीव सब एक समान हैं। पुद्गलमें स्वर्ण हो, तृणहो ये एक समान हैं। जो मरण कर रहा है उसके लिए स्वर्ण क्या मददगार है? क्या करणहार है? साथ जाएगा क्या? न तृण साथ जाता न स्वर्ण साथ जाता। कंचन कांच बराबर है। जगतके जीव कोई मेरी निन्दा करें, कोई प्रशंसा करें। प्रशंसकसे मुझे कुछ मिलेगा नहीं, निन्दकसे मेरा कुछ जाएगा नहीं, वेसब मेरे लिए एक समान हैं। स्थान चाहे सुन्दर हो, चाहे श्मशानहो, चाहे बेहूदाहो, उस स्थानसे मेरा क्या प्रयोजन? यह मैं आत्मा निश्चय से अपने प्रदेशोंमें रहता हूं। व्यवहारत: मैं इस देहमें रहता हूं, उपचारत: मैं इस क्षेत्रमें रहता हूं। तोवस्तुत: मैं अपने आत्मप्रदेशोंमें ही रह रहा हूं। बाह्य क्षेत्र कैसा हीहो, मुझे सर्व प्रकारके क्षेत्रोंमें समताभाव है।

सल्लेखनाधारीका चतुर्विंशतिस्तवन—इस कालमें जो चतुर्विंशति तीर्थंकर हुए हैं जिस तीर्थ परम्परामें रहकर आज हम धर्मसाधनासे, उद्यमी हुएवे चतुर्विंशति तीर्थंकर मेरे आराध्य देव हैं। उनको मेरा प्रणाम हो। वृषभदेव चतुर्थकालके प्रारम्भमें तीर्थंकर हुए हैं। उन समस्त तीर्थंकरोंने अपने आपका कल्याण करके जगतके इन सब जीवोंको उपदेश कियाकि आप अपने स्वरूपको जानें और उसहीमें रमें, यहीं संतुष्ट रहेंतो संसारके संकटोंसे छूटनेका उपाय न बनेगा। उन्हींके जिन वचनको अमृत समझकर मैं उनका पान कर रहा हूं, उसी उपदेशके अनुसार मैं चलूँगा। मुझे बाह्यपदार्थोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है। वृषभदेवके बाद श्री अजितनाथ स्वामी सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभु, सुपार्श्वनाथ, चंद्रप्रभु, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्द्धमान प्रभुको मन वचन कायसे नमस्कार हो। जिनकी तीर्थपरम्परासे आज तक यह धर्मप्रसंग चला आ रहा है। जगत में सब चीजें सुलभ हैं, जहां चाहे जन्में। जहां जन्मेंगे वहीं पौद्गलिक ढेर मिलेगा। पुण्यबंध हुआ हैतो उसके विपाककालमें कुछ सुहावना ढेर हुआ है, सारी चीजें सुलभ हैं। किन्तु आत्मज्ञान दुर्लभ है। कोई आत्मज्ञानकी तुलना करेकि तीन लोकके वैभवके बराबरतो होगा आत्मज्ञानतो उसकी तुलना नहींकी जा सकती। तीन लोकके पुद्गलका ढेर मेरे इस आत्माके किस काम आएगा? यह सद्बुद्धि तीर्थंकरोंके उपदेशसे प्राप्त हुई है। सो जिनके प्रसादसे यह उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश पाया है उनका बारबार स्मरण करते हैं। उनका आभार मानते हैं।

सल्लेखनाधारी ज्ञानीका कायोत्सर्ग व साम्यभाव—मैं अब प्रभुके बताए हुए उपदेशके अनुसार समस्त पदार्थोंसे ममत्व तजता हूं। कायोत्सर्गका अर्थ है शरीरसे ममत्वका त्याग कर देना। जब यह कहा जाता हैकि पूजा पढ़कर, पाठ पढ़कर कायोत्सर्ग करोतो उसका ठीक अर्थ यह हैकि अब आप अपने शरीरमें ममत्व छोड़ दीजिए। सो ममत्व छोड़नेके प्रसंगमें कुछ न कुछतो शुरुआत चाहिए। कैसे ध्यानका प्रारम्भ करेंकि मेरा इस समय शरीरसे भी ममत्व छूटे, विकल्प छूटेतो वह प्रारम्भ किया

जाता है णमोकार मंत्रसे। अर्थात् जिन्होंने इस देहसे ममत्व छोड़ा, देहसेजो रहित हुए उन आत्मावोंका स्मरण किया जाता है। जोपुरुष जिस कार्यको करना चाहता है उस कार्यमेंजो सफल हैं उनका सम्बंध बनाना चाहते हैं। यह एक लोकनीति है। तोये कल्याणार्थी पुरुष समस्त पदार्थोंसे ममत्व तजकर अविकार ज्ञानस्वभावमें रमना चाहते हैं, तोजिन्होंने इस कार्यमें सफलता पायी है उन आत्मावोंको नमस्कार कर रहे हैं कायोत्सर्गके लिए, जिनमेंसे अरहंत सिद्ध साधु इन तीनका ध्यान है। आचार्य उपाध्याय साधुये तीनोंही साधु कहलाते। उन साधुवोंको नमस्कार और उनके गुणस्मरण यहहो रहा है णमोकार मंत्रमें और उस साधनाके प्रसादसे चार घातिया कर्मोंका नाश करते हुए सकल परमात्मा हुए। उनके वीतराग भावका और इस उज्ज्वल ज्ञानप्रकाशका स्मरण कर रहा है, और अरहंत अवस्थाके बाद चार अघातिया कर्मोंके विनाशसे देहरहित अवस्था हुई है, सिद्ध भगवान हुए हैं उनका स्मरण कर रहा है। तो णमोकार मंत्रके ध्यानसे प्रारम्भ करके यह जीव कायसे ममत्वको त्याग रहा है। किसी भी एक कार्यको करनेके लिए उसकी विधि और मुद्रा बनती है, सोयह मैं कायोत्सर्गके लिए पहले अपने आपकी दिशावोंको नियंत्रित करता हूं। मेरा इतनेही क्षेत्रका परिमाण है, इस क्षेत्रसे बाहर मेरा इस समय ममत्वका त्याग है। और यह क्षेत्र भी चूँकि रहना पड़ रहा है इसलिए सम्बंध है, वस्तुत: मैं अपने आत्मप्रदेशोंमें ही रह रहा हूं। समताभाव, रागद्वेष नहीं है वहां किसी परवस्तुमें उपयोग नहीं गड़ाया जा रहा है। तो जान जानकर बाह्य पदार्थोंका मैं त्याग करता हूं ताकि उनके आश्रय छूटे और मेरे विकल्प न बढ़े, और मैं अपने इस ज्ञानानन्दमय स्वभावमें ही बसकर पूर्ण समतारससे पूरित रहूं।

स्वभावदृष्टिसे अद्भुत समताकी महिमा और शरण्यता—सामायिकके समान जगतमें दूसरा कुछ भी मेरा उपकारी नहीं है। समताभावही मेरा उपकारी तत्त्व है। इस प्रकार यह श्रावक सल्लेखनाके समय अपने स्वभावकी दृष्टिको पुष्ट कर रहा है। धर्मपालन वही है, धर्मपालन दूसरा नहीं है, चाहे कोई अपवित्र हो, पवित्र हो, प्राय: करके मरण समयमें लौकिक दृष्टिसे शरीर अपवित्रही रहता है। थूक मलमूत्र आदिक कैसीही दशाएँ रहती हैं। तोचाहे अपवित्रहो चाहे पवित्रहो, शरीरकी बात शरीरमें चल रही, धर्मतो आत्माका आत्मामें है। और आत्माको ही धर्मकी दृष्टि करना है। सो धर्मपालनकी बात अन्दर चल रही है। कदाचित इन्द्रियके शिथिल होनेसे यह बेहोश भीहो जाएतो इन्द्रियां हीतो बेहोश हुई हैं। आत्मा भीतर सावधान बना रह सकताहै। बेहोशीका भी क्या डर? बेहोशी आएतो आए, बेहोशीका प्रभाव बाहरमें पड़ता है, अन्दरमें नहीं पड़ता। अन्दरतो जैसा संस्कार है, जैसी भावना है वैसाही प्रकाश रहता है, इस तथ्यको कोई बाहरी लोग नहीं जानते अतएव कहा करतेकि यहतो बेहोशहो गया। बेहोश होनेसे मरण नहीं बिगड़ता। वहतो देहकी चीज है, उस प्रकारसे होगी ही। परजो ज्ञानी हैं, जिनके धार्मिक संस्कार है वे अन्त: प्रकाशमानही रहते हैं। सो यह मैं सर्व बाह्य पदार्थोंसे हटकर अपनी इस स्वभावदृष्टिमें ही रहूं और स्वभावदृष्टि करता हुआ इस शरीरसे पयान करूं।

आहारं परिहाप्य क्रमशः स्निग्धं विवर्द्धयेत्पानं।
स्निग्धं च हापयित्वा खरपानंपूरयेत्क्रमशः॥ १२७॥

http://www.jainkosh.org

खरपानहापनामपि कृत्वा कृत्वोपवासमपि शक्त्या।
पञ्चनमस्कार मनास्तुनं त्यजेत्सर्वयत्नेन॥ १२८॥

कायसल्लेखनामें कर्त्तव्य—सल्लेखना धारण करने वाले महापुरुषने तत्त्वज्ञानके बलसे विषय कषायोंका परिहार किया है। जिसके विषयोंकी इच्छा नहीं, कषायके लिए उमंग नहीं उस पुरुषके शरीरकी सल्लेखनाका अवसर स्वयंही आ जाता है। जब विषयोंकी भावना नहींतो आहार करनेकी लम्पटता कैसे आ सकती है। सो यह महापुरुष भोजन आदिककी वाञ्छाको भी अपकारक जानता और जब यह शरीर हीजा रहा है, मरण अवसर आया हैतो इस अवसरमें उस भोजन आदिककी गृद्धता करना उचित नहीं है। यह सब समझकर क्रमसे जैसा आयुका अवसर दिखता है उस प्रकार इन्द्रियसे ममतारहित होकर आहारके आस्वादनसे विरक्त होता है और विचार करता हैकि हे आत्मन्! तूने इतना आहार कियाकि एक-एक जन्मका एक-एक कण भी इकट्ठा किया जाएतो अनगिनते ढेर लग जाएँगे। अनादि कालसे अब तक कितने जीवन पाए, अनन्त जीवन पाए, सोएक जीवनका एक ही दाना गिनतीके ढंग से इकट्ठा किया जातातो मेरुपर्वत बराबर अनेक ढेर लग जाते, पर तू आहारसे कभी तृप्त नहीं हुआ। अब इस अवसर पर जबकि देहके नष्ट होनेका निश्चय है और फिर भी आहार विषयक वाञ्छा लिए रहेंगेतो इससे कल्याण नहीं है। तूने इतना जल पियाकि एक-एक जीवनका एक ही बूंद इकट्ठा किया जाएतो अनन्त समुद्र भर जाएँ इतना जल पिया। उस जलसे भी तेरी तृप्ति नहीं हुई, तोअब जोयह रोग बुढ़ापाके कारण मरण निकट आया है उस मरणकालमें ही तू आहार पानीमें चित्त धरे रहेगातो उससे तृप्तितो न होजाएगी। आगे अनेक भव धारण किया जाना होगा, वहां भी ऐसी वेदना पाएगा। तोआहार पानीकी गृद्धता न करें।

आहारत्यागके अवसर व अनवसरका विश्लेषण—यहां एक बात ध्यानसे समझनाकि जिसका शरीर इस काबिल हैकि अभी धर्म कर सकते, नियमसे कर सकते, और ऐसे अवसरमें भी कोई समाधिमरण करेतो वह आत्मघात कहलाता है, वह अपनी हिंसा है, समाधिमरण तबकी चीज है जब यह जानें, मरणकाल आ ही गया। ऐसे अवसर पर व्रतमें कोई भंग होताहो शरीरकी स्थितिके कारण, जैसे अंधेहो गए, संयम नहीं पल सकता या कुछ बात होतो वहां पर भी विचार किया जाता हैकि मैं इस संन्यासमरणको झेल सकूंगा या नहीं। ऐसी स्थितिमें भी अपनी शक्ति न देखकर कोई समाधिमरण धारण करले और संक्लेश परिणामसे मरणहो जाएतो उस हठसे भी लाभ नहीं है, यहतो धार्मिक बात है, जिसमें अपना धर्म न बिगड़े, धर्म सधेसो कार्य करना। तोयह विवेकी पुरुष जब यह देख रहा हैकि अब यह देह न चलेगा, अत्यन्त निकट समय है मरणकातो उस समय यह आहार जल आदिकका ही त्याग करके समस्त वाञ्छावोंसे रहित होकर अपने आपके स्वरूपका ध्यान करता हुआ शरीरको छोड़कर चला जाता है।

भोजन लम्पटता पर विषाद—यह सल्लेखनाधारी अपने आपको सम्बोध रहा है कि हे आत्मन्! तूने अनन्त भवोंमें भोजन पानकी गृद्धताकी और इस भवको भी पायातो इस जीवनमें भी कितना आहार

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जल ग्रहण किया। रोजदो-बार, चार-बार ६ बार तथा स्वच्छंद होकर खूब आहार पानसे अपनेको खुश रखना चाहा। आहारका लोभी होकर अनेक प्रकारके आरम्भ किया। अमुक चीज खानेकी बनाना, यह बड़ी स्वादिष्ट है, चूल्हा जल रहा है, आंसू बह रहे हैं, अनेक उद्यम कर रहे हैं, न जाने कहां-कहांसे क्या-क्या चीज बटोरी, न जाने कैसा-कैसा परिश्रम कर रहे हैं, एक आहारके स्वादके वास्ते हीतो। जीवन भर एक काम किया, आहारका लोभ किया, झूठ, चोरी, परिग्रह आदि सभी तरहके पापोंकोभी करना पड़ा, दुर्ध्यान करके खोटी क्रियाएँकी, दूसरेके आधीन हुए, स्त्री पुत्रादिकके आधीन हुए, कितनीही दीनता आयी, एक आहारके अर्थ हीतो यह सब किया। अनन्तबार आहारकर करके भी तू तृप्त न हुआ। भक्ष्य अभक्ष्यका विचार न रखा, रात दिनका विचार न रखा, आहारकी लम्पटताहो गई। कैसी ही प्रवृत्तिकी।

रात्रि भोजनका कलंक—जैन कुलमें जन्म लेने वाले पुरुषोंका यह मुख्य चिह्न है कि रात्रिमें भोजन न करना, किन्तु अब रात्रिभोजन एक आम रिवाजसा बना डाला और कोई रात्रिको भोजन न करे, विवाह बारातमें गयातो वह मजाकका साधन बन गया। जहां ऐसी खोटी बात चल उठे वहां फिर जैन कहलानेका हक क्या रहा? कोई पुरुष अकेलेही भ्रष्टहो जाए, खुद रातको खाने लगेतो यह एक उस व्यक्तिकी बात है, उससे परम्परा नहीं बिगड़ती, मगर सामूहिक भोजन, विवाह, बारात, पंगत या अन्य प्रीतिभोज रात्रिको ही करने लगेतो यहतो जैन धर्म पर बड़ा प्रहार किया। अकेला भ्रष्टहो जाएतो वह उसके अकेलेकी बात है मगर जहां सामूहिक रात्रि भोजनकी प्रवृति चल जाती है तो उसके मायने यह है कि अब इस धर्मके मानने वालोंमें धर्म प्रवृत्ति न रही। एक आहार पानजो केवल प्राण टिकानेके लिएही किया जाता है उसे इतना शौक बना डालाकि रात-दिनका भी कुछ विवेक न रहा। यहतो जैन समाजके लिए एक कलंक है। और सामूहिक प्रथा चला दियातो वह इस समयके अग्रगण्य लोगोंके लिए कलंक है। जोमुख्यजन हैं उनका कर्तव्य यह हैकिवे सामूहिक रात्रि भोजनका एक रिवाज न बनाएँ, उस रिवाजको तोड़ दें।

संक्लेश व आसक्तिसे हटनेका सम्बोधन—अरे अनेक प्रकारसे भोजनके पीछे खोटे कर्म किए और उससे भी तृप्त न हुए, तो अब मरणके अवसर पर जहां निश्चित हैकि कुछही समय बाद प्राण चले जाएँगे वहांभी यदि आहार जलमें वाञ्छा रखी और इस तरहसे तृष्णापूर्वक मरण कियातो शरीरतो आगेभी मिलेगा, दुःख ज्योंका त्योंही बना रहेगा। ऐसा विवेक करके यह ज्ञानी पुरुष आहारकी लम्पटताको छोड़ देता है। बहुत विवेकहो तबतो ठीक है, यदि कोई ऐसाही भावुक होकि कराऊंगा समाधिमरण, हमारा एक नाम रहेगाकि इन्होंने समाधि मरण कराया। इस धुनमेंजो रहेगा वह न जाने कितनोंका अनर्थ करता रहेगा। विवेकी पुरुषतो दूसरेके आत्माका हितही चाहते हैं और हर तरहसे समझो। ऐसा त्यागभी न कराना चाहिएकि जिससे यह परखाजा सकेकि यह बड़े संक्लेश करके मरण करने लगा।

सामूहिक बिगाड़से तीर्थप्रवृत्तिका विनाश—देखिये बाततो यह हैकि संक्लेशसे मरण न होना चाहिए। इसमेंदो बातें नहीं हैं, चाहे बाह्य त्याग कितनाही कम रहे न रहे, कैसीभी स्थिति बने। यदि संक्लेश रहित मरण होता है और पंचपरमेष्ठियोंके गुणस्मरण पूर्वक अपने अन्तः स्वरूपकी आराधना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पूर्वक मरण होता हैतो समाधिमरण यह है। आहार आदिकका त्याग करना यह एक आनुंषगिक है। किसीने कायसल्लेखना किया, आहार जलका त्याग किया, पर विषयकषायकी सल्लेखना नहींकी, कषाय रही, ममता रही, नामकी वाञ्छा रही, मरतेतो जारहे और नामकी इच्छाहो रही है, लोग जानेंगेकि इन्होंने कैसा समाधिमरण करके दिखाया? अरे यहतो बहुत खोटा परिणाम है, ऐसी कोई वाञ्छा करे और बाहरसे भी कष्ट भोगे और अन्तरंगसे भी खोखले रहेतो उसमेंतो कुछ लाभ ही नहीं मिलता। सोपहले आत्माको पूरा सावधान बनाना चाहिएकि जहां बाह्य जगतमें कुछभी चाह न रहे, न भोजनकी, न नामकी, न प्रंशसाकी, कोईभी इच्छा न रहे, यह बात बनती है उसके जिसने सहज आत्मस्वरूपका अनुभव किया है। जबरदस्ती धर्म नहीं हुआ करता, किन्तु भीतरमें ज्ञानप्रकाश पाने वालेके धर्मसहजहो जाता है। जैसे कभी प्रवचन सभामें कोई महिला छोटा बच्चाले आयी है, वह रोने लगातो उसका मुख बंद करके उसका रोना नहीं मिटाया जा सकता। उसका उपाय कोई दूसराही किया जाता है। ऐसेही जबरदस्ती भावुकतामें आकर समाधिमरण कोई कर रहा हो और बता देंगे दुनियाकोकि समाधिमरण ऐसा होता है, ऐसा भाव आएतो समझोकि मेरा सब गया। इतना सावधान होना चाहिए सल्लेखनाधारीकोकि उसके केवल अपने आत्मतत्त्वकी ही धुन रहे। विषय कषायमें सल्लेखना पूर्वक काय संल्लेखनाकी चर्चा चल रही है। कोई पुरुषकाय सल्लेखना न कर सके, ऐसाही अवसर आए और विषय कषायकी सल्लेखना कर लेतो उसकेतो समाधिमरण कहलाएगा, परजो पुरुषकायकी सल्लेखनातो खूब करेकि अमुक चीज छोड़ा, अमुक चीज छोड़ा, हड्डियां निकल आयीं पर विषय कषायकी सल्लेखना न करेतो उसके सल्लेखना मरण न कहलाएगा।

शारीरिक वेदनावोंमें कष्ट न माननेका सम्बोधन—यह विवेकी पुरुष अपनेआपको समझा रहा हैकि तूने अनन्त जन्मोंमें ऐसे-ऐसे कष्ट पाए और बड़े कष्टोंसे मरण कियातो इस मरण समय में तुझको कष्टही क्या है? अनेक बार शस्त्रसे कट कटकर मरा, दूसरे व्याघ्र शेरोंने तुझे अनेकों बार खाया। अनेक प्रकारसे जीवोंने दबोचा, बुरी तरह मरण किया। अब यहतो एक शुभ अवसर है। अनेक धर्मात्माजन निकट बैठे हैं। सबकी यह ही भावना हैकि इसके समता भाव जगे। बाह्यका विकल्प हटे और आत्मदृष्टि करता हुआ इसके समताभाव प्रयाण करे। एक कर्मोदयवश शरीरमें वेदना आयीतो यह क्या कष्ट है? कर्मका उदय कर्म में है, देहकी बात देहमें है, मेरी बात मेरेमें रहे, ऐसी भावना करके इन समस्त कष्टोंसे मैं अपने चित्तको विमुख करूं। यह एक शुभ अवसर है। यदि यहां चूक गएतो अगला भव जन्ममरणमें गुजरेगा। भवोंकी परम्परा चलेगी, जीवनमें दुःख ज्योंके त्यों रहेंगे, यदि समाधिभावसे मरणहोतो कुछही भव धारण करके निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर तपश्चरण करके निर्वाणपद पाऊंगा। सदाके लिए संकटोंसे छूट जाऊंगा।

आत्मीय सहज आनन्दके अनुभवीको अन्यत्र कष्ट न माननेकी सुगमता—जिस पुरुषने आत्माके सहज ज्ञानानन्द स्वरूप आनन्दमय आत्मतत्त्वको अनुभवा है, जिसके बलसे यह निश्चय हुआकि इस आत्मानुभवके अतिरिक्त अन्य कुछभी सार नहीं है। जो आनन्द अपने आपके स्वरूपमें लीन होनेमें है वह आनन्द बाहर कहीं भी रंचमात्र नहीं है। इस अलौकिक आनन्दको जिसने भोगा है उसके लिए

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समाधिमरण जराभी कठिन नहीं है वहतो बड़ी प्रसन्नताकी चीज है। जीवनमें अनेक समारोह हुए, शादी विवाह आदिकी अनेक खुशियां आयी अनेक-अनेक उत्सव किया मगर वेसब उत्सव कुछ नहीं है। मरणकालमें जो एक आत्मदृष्टिका वातावरण बन रहा है उस समारोहके आगे सारे समारोह फीके हैं। वे क्या उत्सव हैं, वेतो पापके कार्य हैं और संसारमें रुलनेकी परम्परा बढ़ाने वाले हैं। एक यह मरण समारोह संन्यास पूर्वक, समता पूर्वक आत्मदृष्टि सहित शरीरसे पयान करनेका यह उत्सव महाउत्सव है। विवेकी पुरुष इसमें अतीव प्रसन्न रहता है। उसकी दृष्टिमें उसका आत्मस्वरूप बना हुआ है, और ऐसी आत्मदृष्टि सहित मैं इस शरीरको छोड़करजा रहा हूं। हे आत्मन्! इस जीवनमें धर्मबुद्धिसे अनेक उपवास किया, धर्मपालनकिया, अनेक वाञ्छाएँ बनी रहींकि मैं धर्मके लिएही यह जीवन लगाऊंगा, तो अब उसका हीतो यह अवसर है। यह हीतो परीक्षाका समय है। यहां इच्छाएँ न जगें, परिणाम न बिगड़ें, ऐसी साधना रहेतो जीवनभर किए हुए व्रत, तपका फल मिल जाएगा। यह विषय कषायोंकी सल्लेखना करता हुआ शरीरकी सल्लेखना करने वाला विवेकी पुरुष क्रमसे आहारको त्यागता है। यह त्याग मरण समयमें परिणाम न बिगड़े इसके लिएभी आवश्यक है। मरणहो रहा है, खातेजा रहे हैं, खांसीआ रही, कफहो रहा, अनेक प्रकारकी बाधाएँ आती हैं। वह स्थिति ऐसी हैकि आहारका त्याग करने सेही ठीक गुजारा चलेगा और फिर जब विषय कषायोंसे विरक्ति हुई हैतो आहारकी इच्छा कौन करेगा? आहार त्याग करे, दूध परही रहे, फिर दूधकाभी त्याग कर छांछ परही रहे, फिर छांछका भी त्याग कर दिया। इस प्रकार सर्व वाञ्छावोंसे रहित होकर पंच नमस्कार मंत्रमें मनको लीन करता धर्मध्यानी हुआ। आत्मप्रतीतति सहित सही यत्नसे देहको त्यागकर जाना सल्लेखना मरण कहलाता है।

आत्मघात और समाधिमरणका विश्लेषण—एक यह प्रश्नहो सकता है जैसेकि बहुतसे लोगोंको संदेहभी चलता हैकि यह समाधिमरण क्या है? आत्मघात है। जैसे कोई कुवेंमें गिरकर मरेतो क्या, आहार पानी त्यागकर मरेतो क्या, आखिर वह आत्मघातहीतो रहा। ऐसा संदेह करने वाला प्रथमतो यह जानेकि जब तक यह देह चल रहा है, धर्मसाधनहो रहा है ऐसी स्थितिमें कोई आहार जलका त्याग करे, समाधिमरण करेतो वह आत्मघात कहलाता है और इसका फल अच्छा नहीं निकलता। इस कुबुद्धिसे मरण करने वाला पुरुष आगे देह पाएगा, जन्ममरणकी परम्परा रहेगी और आगे पाएगा देह खोटा असंयमों वाला। मानलो थोड़ा पुण्य किया था उस प्रभावसे देवभी हो गएतो क्या हुआ? असंयममेंही समय गुजरेगा और यहां मनुष्यभवमें संयम सहित जीवन गुजर रहा है।तोदेह जब तक इस काबिल है कि धर्मध्यानमें बाधा नहीं आती, सही ज्ञान चल रहा है, स्वाध्याय सुनना, वाचना चल रहा हैतो आवश्यक क्रियाएँ चल रही हैं, ऐसी स्थितिमें कोई समाधिमरणका नाम लेकर आहार आदिकका त्याग करदेतो वह आत्मघात कहलाता है। किन्तु जब ये देखाकि यहतो इस काबिल न रहाकि ध्यान, संयम, तपश्चरणमें न रह सकेतो जहां हमारा धर्म बिगड़ातो समझो हमारा सब कुछ बिगड़ा कहलाएगा। ऐसे अवसर पर आहारका त्याग करना, सल्लेखना मरण करना धर्म है, क्योंकि धर्मके लिएही जीवन था और वह धर्म बिगड़ रहा और यहभी निश्चित हुआकि यह देह रहेगाभी नहीं, ऐसी स्थितिमें आहार आदिकका त्याग कर प्रभु गुणस्मरणमें, आत्मदृष्टिमें उपयोग रखते हुए मरण करेतो वह धर्म है, समाधि मरण है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

धर्मान्धतामें अनवसर मरण ठान लेनेमें कल्याणका अभाव—यह आज मनुष्यभव पाया, सत्संग पाया, विवेक पाया, संयमभी चल रहा, धर्मध्यानभी चल रहा, महाव्रत अणुव्रत पल रहा, स्वाध्याय, ध्यान, दानशील, तप, व्रत, उपवास आदिक बराबर ठीक पल रहे हैं, जिनेन्द्र पूजा, दर्शन, स्वाध्याय, धर्मोपदेश, चारों आराधनाएँ बराबर अच्छी तरह निभ रहीं और कोई ऐसा गड़बड़ समयभी नहीं हैकि कठिन दुर्भिक्षहो या कठिन बुढ़ापा आयाहो या एकदम असाध्य रोग हुआहो, ऐसीभी स्थिति नहीं है फिरभी एक धर्मान्ध होकर समाधिमरण करनेवाले पुरुषोंमें लोगोंकी भक्ति देखकर आहार आदिकका त्याग कर मरण करलेतो वह आत्मघात है। और वह कैसे आत्मघात हैकि एकतो इस भवमें जो धर्मधारणहो रहा था, धर्म निभ रहा थासो अपनेमें धर्मका घात किया। मरकर असंयमी बनेंगे। दूसरे भीतरके ज्ञानप्रकाश बिना जिनेन्द्र भगवानके कहे हुए वचनोंके विरुद्ध कोई संन्यासमरण धारण करता हैतो वहां संक्लेश है और जिनाज्ञाका भंग है। कैसा अवसर होकि समाधिमरण करना, इसका भले प्रकार ज्ञान होना बड़ा आवश्यक है। असंयममें दोनों तरफसे गया। न तो इस भवमें शान्ति रही, न आगे भवमें शान्ति रहेगी। सो यदि समाधिमरणका अवसर नहीं है, देहमें बराबर धर्मसाधनाकी वृत्तियां चल रही हैं ऐसे अवसर पर आहार आदिक त्यागना आत्मघात है, किन्तु जब देखाकि धर्मसंयुक्त शरीरकी रक्षा करनातो कर्तव्यथा मगर जब देहइस काबिल नहीं हैकि उससे धर्मकी रक्षा कर सकेंतो वह समाधिमरण ग्रहण करता है। जबरदस्ती इस शरीरको छोड़ दिया, मर गएतो हाड़ मांस वाले इस शरीरको छोड़ातो क्या लाभ हुआ। आगे हाड़ मांस वाला शरीर मिलेगा। छोड़नातो कार्माण शरीरका जरुरी है। इन कर्मोंको बाहर हटाइए। कर्मोंको बाहर हटानेका उपाय हैकि कर्मादिकसे रहित अविकार स्वभावी इस ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वकी प्रतीति करें। सहज परमात्मतत्त्वकी दृष्टिके प्रसादसे अपने आपमें विशुद्ध आनन्दका अनुभव करें।

समाधिमरणमें आन्तरिक व बाह्य शान्त वातावरणकी आवश्यकता—समाधिमरणमें विवेकका काम चलता है। चूँकि अब देह हमारा साथ नहीं निभाताकि हम अपनी क्रिया समिति पूर्वक कर सकें। इसलिए जिसने पहलेसेही अनेक उपवासों द्वारा अभ्यास कर लिया है वह आहार आदिकका त्याग करता है। उस स्थितिमें इसका उपयोग कहां रहा करता है? प्रभुगुणोंके स्मरणमें, अपने आत्मस्वरूपके ध्यानमें। तीसरी बातसे इसका मतलब न रहा, अगर किसी दूसरी बातसे मायने आरम्भ परिग्रह आदिकसे या परिचित मित्रजनसे इसका कोई प्रयोजन है, बुलाता है, आवो बैठो, अच्छे आए, खूब खबरली, तोइन बातोंमें तू अपने परिणाम बिगाड़ रहा है, मोहका परिणाम ला रहा है। संन्यासमरण करने वालेसे तो इस तरहकी बात विवेकी पुरुषको करनाही न चाहिए किअब हमआगए, बताओ तुम हमें पहिचानते कि नहीं? अरे इन फिजूलकी बातोंमें क्या रखा है? उसकोतो ऐसा योगदान देना चाहिएकि जिससे उसके परिणामोंमें विकल्प न आए। तोऐसे *बाह्य विकल्प त्यागकर आत्मगुणस्मरण* सहित मरण करना समाधिमरण कहलाता है सोप्रत्येक कल्याणार्थीका लक्ष्य होना चाहिएकि मैं जीवनमें ऐसा धर्मकार्य करूंकि मरण समयभी मेरा परिणाम बिगड़े नहीं और समतापूर्वक मरण करके मोक्षमार्गमें प्रगति करूं।

http://sahjanandvarnishastra.org/

तत्त्वज्ञानके बलसे इन्द्रियविषयोंके परिहारकी सुगमता—सर्व इन्द्रियोंमें बाधा देने वाली इन्द्रियां हैंतो स्पर्शन, रसना ये दो हैं और इनकी सहयोगी है चक्षुइन्द्रिय, क्योंकि इन्द्रिय विषयमें विशेष बढ़ें इसका प्रारम्भ होता है चक्षुइन्द्रियसे। देखातो इच्छा बढ़ी, देखातो अनेक वासनाएँ जगी। तोवहां सभी इन्द्रियां बाधक हैं, निरन्तरके प्रयोगमें येदो इन्द्रियां अधिक बाधक हैं—रसना इन्द्रिय और चक्षु इन्द्रिय। इनकीही स्वच्छन्दतासे फिर यह जीव स्पर्शनइन्द्रियमें बढ़ता है, कामसेवनमें बढ़ता है। यदि इनदो इन्द्रियोंका सहयोग न मिलेतो उसका ब्रह्मचर्य पालन बहुत सुगम होता है? सोदेखो सुयोगकी बात अन्य इन्द्रियपर ढक्कन नहीं लगा है। जैसे हम चाहेंकि कुछ सुने नहींतो अपने आप हम कान कैसे बन्द करें नाकको कैसे बन्द करें। अगर चाहेंकि हमें कुछ चखना, बोलनाही नही हैंतो ओठोंको बंद कर लीजिए। यहांदो ओठ मिल गए। इनदो इन्द्रियोंके जोदो ढक्कन मिलेये इसलिए मिले हैंकि इनका उपयोग करें। दोनों पलक मूंदकर आंखें बंद करें, येदो बातें जिसके चलती हैं, जिसके लिए मनका नियंत्रण भी चाहिए उसके लिए कषायोंका त्याग करना आसानहो जाता है। तभी समाधिमरणके अवसर पर यह ध्यान दिलाया गयाहैकि आहारका त्याग करें जिससे चित्त यहांवहां न डुले।

आत्मधर्म वैभवकी रक्षाके लिए कायोपेक्षा—यह आहारत्याग कुछ भावुकता वाला त्याग न होना चाहिए। किन्तु जब यह देखाकि इस घरमें आग लग रही हैतो अब क्या करें घरमें आग लगनेदो, मगर वहांजो हीरा जवाहरात रत्न रखे हैं उनको झट निकाल लें, ऐसेही इस देहमें आग लग रही है मायने रोग है, व्याधि है, वृद्धताहै। शिथिलहो गए, अब यह किसी कामकाही न रहातो इस देहकी ऐसी स्थिति होतीतो होनेदो, मगर इसको खतम करके अपने रत्नत्रय सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र निधिकीतो रक्षा करलें। कहीं इस देहके ममत्वके कारण रत्नत्रय नष्ट नहो जाए और होगाही, यदि देहमें ममत्व है। तो आहार आदिकके त्यागका मूल अभिप्राय यह हैकि मेरा रत्नत्रय न बिगड़ जाए, सो रत्नत्रय बिगड़ने लायक जब देहकी स्थिति बन जाती है उस समय त्याग बताया है, क्योंकि इस ज्ञानी जीवका लगाव अपने स्वरूपसे है, देहसे नहीं है इसलिए सर्वकुछ त्याग करना उसके लिए बहुत आसान रहता है।

सल्लेखनामरण करने वालेको परम शान्त वातावरणकी आवश्यकता—समाधिमरण करने वाला पुरुष यह चाहता है कि यहांका वातावरण शान्त रहे। कोलाहल न हो, कोई मोह ममता रागकी बात कहने वाला नहो और कुटुम्बीजनोंका आवागमन न हो। अन्य धर्मात्माजनजो मोह रागके विषयभूत न थे उन्हीं पुरुषों द्वारा धर्मश्रवण करनेको मिले, ऐसी उसकी भावना रहती है। औरजो योग्य विवेकी समाधि कराने वाले पुरुष हैं उनको इस तरहका परिचय रहता है समाधि मरण करने वालेकी आवश्यकताका कि यह ममतासे छूटे। वह जोरसे समाधि मरण न सुनाएगा। जब यह देखेंगे कि यह अपने ध्यानकी ओर बढ़ रहा है तो वह सुनाना बंद कर देगा। किसीभी प्रकारका अशान्त वातावरण न हो और इसके ध्यानमें बाधा न आए, इस सब रहस्यको, बातको जानने वाला होता है निर्यापक जो समाधिमरण कराने वाला है तो ऐसी बड़ी सद्भावनासे सल्लेखनाको धारण करने वाले पुरुषने अपने आपको पूर्ण सावधान रखा। अब यह आराधक सल्लेखनाके किसीभी अतिचारको लगने नहीं देता। वह अतिचार कौन हैं सो आचार्य बतलाते हैं—

Report any errors at vikasnd@gmail.com

जीवितमरणाशंसे भयमित्रस्मृतिनिदानामानः।
सल्लेखनातिचाराः पंच जिनेन्द्रैः समुद्दिष्टाः॥ १२९॥

(१) सल्लेखनाधारी द्वारा सल्लेखना जीविताशंसानामक प्रथम अतिचारका परिहार— जीनेकी इच्छा करना, सल्लेखनाधारी ज्ञानी पुरुष क्यों चाहता है कि मैं और जीऊँ? क्या प्रयोजन है जो लोग चाहते हैं कि मैं और जिन्दा रहूं तो उसका प्रयोजन होता है ममत्वका। मैं घरमें और बना रहूंगा तो बाल-बच्चोंको और भी देखता रहूंगा, मेरा यहां बड़ा यश नाम फैला है। लोगोंसे बड़े रागके वचन मिला करते हैं, ऐसा मौज और लूँगा, ऐसीही कुछ भावना होगी जिससे कि वह चाहता है कि मैं और जिन्दा रहूं। और जीनेकी इच्छाका आधारतो अज्ञान है जिससे चाहता है कि मैं और जिन्दा रहूं। तो जीनेकी इच्छाका आधार तो अज्ञान है। जो यह जान रहा कि जीना और मरण क्या है। एक देहमें आ गए उसे लोग जीना कहते हैं। देहको छोड़कर चले गए उसे मरण कहते हैं, यह देहतो पौद्‌गलिक है। मेरे स्वभावसे, स्वरूपसे अत्यन्त भिन्न है, इसका मुझे क्या लगाव? यहां न रहे और जगह चले गए, जिन जीवोंसे परिचय है वे भी सब मायामयी हैं, जोदिख रहा है। जोपरमार्थ है वह अविकार ज्ञानस्वरूप है। परमार्थसे पहिचान क्या? और पहिचान है तो विलक्षणता नहीं रहती, जहां विलक्षणता जंचे उसी को ही तो पहिचान कहते हैं, जब सर्व जीव स्वरूप एक चैतन्यमात्रही निगाहमें रहे फिर वहां परिचय क्या कहलाएगा? सोकिसी भी जीवके परिचयका क्या प्रयोजन? सल्लेखना धारी जीनेकी इच्छा नहीं करता, आचार्य देवने बताया है आत्मानुशासन में कि जिनको धनकी आशा लगी हो या जीनेकी आशा लगी हो उनके लिए कर्म-कर्म हैं और जिन ज्ञानियोंने जीनेकी आशाको त्याग दिया है, धन वैभवकी आशाको त्याग दिया है उनके लिए अब कर्म क्या करे? कर्मका जोर दो बातों तक है। सोकर्म की इन दोनों मेहरबानियोंको जो ठुकरा देता है उसके अब कर्मका क्या लगेगा? जीनेकी आशा सल्लेखनाधारी सम्यग्दृष्टिके नहीं होती। अगर यह भावना आए तो यह दोष है और यह ही दोष बढ़ बढ़कर सम्यक्त्वका घात कर सकता है। एक यह बात बहुत स्पष्ट है कि मैं स्वतंत्र सत् हूं, परिपूर्ण हूं। मेरे स्वरूपमें किसी अन्यसे कोई बाधा नहीं आती, जहां भी हो, मैं अपने परिपूर्ण स्वरूप वैभवको लिए हुएही जाऊंगा उसको मरणका भय ही नही हैं। जीनेकी इच्छा फिर क्यों करेगा?

(२) सल्लेखनाधारी द्वारा मरणशंसानामक सल्लेखनातिचारका परिहार—सल्लेखनाका दूसरा अतिचार है मरनेकी इच्छा करना। कभी कोई कठिन वेदना आ जाती है तो यह मनुष्य सोचने लगता कि मैं मर जाऊंतो अच्छा है। ऐसा सोचने वाला कोई बिरलाही होगा। अव्वलतो कैसीभी कठिन स्थिति हो तो भी मरनेकी इच्छा किसीके नहीं बने। एक बुढ़ियाजोकि शरीरसे बहुत दुर्बल थी, अत्यंत वृद्ध थी। उसको उसके नाती-पोते बड़ा हैरान करते थे तो वह सबसे ऊबकर रोज-रोज भगवानसे प्रार्थना किया करती थी कि हे भगवान तू मुझे उठाले याने मैं मरजाऊं। एक बार उस बुढ़ियाके पास कोई सर्प निकल आया तो वह चिल्लाने लगी, अरे नाती-पोते, दौड़ो, देखो सांप निकल आया। तो वहां कोई नाती बोला—अरे बुढ़िया दादी, तू मत घबड़ा, तूजो रोज-रोज भगवानसे प्रार्थना किया करती थी कि

http://sahjanandvarnishastra.org/

हे भगवन मुझे उठाले, तो भगवानने तुझे उठानेके लिए यह सांप भेजा है, तू मत घबड़ा। आज तेरी वह मंसा पूर्णहो जाएगी। तो फिर वह बुढ़िया बोली अरे-अरे बचाओ-बचावो, सांप निकल आया है। तो बाहरी परिस्थिति कैसीभी हो, पर यह जीव मरना नहीं चाहता। सम्भव है कि कोई ऐसीही कठिन बात हो कि जिससे वह मरण चाहता है। दूसरे लोगतो कह तक देते हैं कि इससेतो अच्छा है कि यह चलदेता घरके मित्र परिजन बड़े प्रेमीभी कहते है उसके दुःखको देखकर इससे तो अच्छा था कि इसका चोला छूट जाता। वह चाहे मनसे कहने लगें, पर मरने वालेका मन नहीं चाहता। और यदि कभी किसी स्थितिमें चाहेतो मरनेकी इच्छा करना सल्लेखना का दोष है।

(३) सल्लेखनाधारी द्वारा भयनामक सल्लेखनातिचारका त्याग—सल्लेखनाका तीसरा अतिचार है भय। अब मरण समय आ रहा, पता नहीं कैसा दुःख होगा, कैसा यह जीव बनेगा, पता नहीं क्या कठिन परिस्थिति आएगी। वह दुःख मैं कैसे-सहूंगा ऐसा भय सम्यग्दृष्टि जीवके नहीं होता। एक कुछ प्राकृतिक बातसी है कि जब तक जीवों पर दुःख नहीं आता तब तक यह जीव बहुत डरता है कि पता नहीं अब क्या होगा, पता नहीं कैसा क्या बीतेगी, और जब दुःखआ जाता है तब उतना भय नहीं रहता। भलेहीं प्रायोगिक वेदनाहो जाए मगर भीतरमें दिल इतना भय नहीं करता। आता है तो उसे धीरतासे सहता है, तो जिस जीव को जो भी दुःख आता है वह सहता ही तो है। आयगा दुःखतो वहभी गुजर जाएगा। समय आता है, जाता है, जीवको किसी भी प्रकारका उस मरणकालमें भय नहीं रहता है। उसका एक निर्णय बन गया कि मुझेतो जाना ही है, संसारकी रीतिही है। बाह्य पदार्थतो जब जिन्दा थे तब भी मुझसे भिन्न थे, जो मेरा न था वह मेरेसे छूट रहा है। जो मेरा है वह मुझसे छूट नहीं सकता। तो ऐसा अपने आपके स्वरूपमें लगाव है कि जिसके कारण इस जीवको कुछ आकुलता नहीं चलती।

(४) सल्लेखनाधारी द्वारा मित्रस्मरणनामक सल्लेखनातिचारका परिहार—सल्लेखनाका चौथा अतिचार है मित्रस्मरण। मरते समय कुटुम्बीजनोंका, मित्रजनोंका याद करना। कितनी बेहूदी बात है कि मर रहा है, कुछही मिनटमें यह शरीर छूट रहा है पर यह याद कर रहा कि अमुक भाई नहीं आए, उनको बुला देना। अमुक मुन्नेको हमारे पास बैठाल देना, और कोई अगर मुन्नेको छाती पर भी धरे तो क्या उसका कल्याणहो जाएगा? अकल्याण ही हो रहा है। ऐसा विवेकी पुरुष मरणके समय किसीकी याद नहीं करता जिससे कि राग हुआ हो। द्वेष जिससे किया है उसकीतो याद करने लगेगा कि उसको बुलांलो क्षमा मांगले, मेरे द्वारा उसको कष्ट हुआ है, मगर जिनसे राग रहा उनकी याद न करेगा। अगर मित्रजन, बंधुजनका स्मरण करते हैं तो वह सल्लेखनाका दोष है। और यही स्मरणका दोष बढ़-बढ़कर इसके सम्यक्त्वको भी बिगाड़ सकता है। क्या प्रयोजन पड़ा है जिनसे राग है उनको बुलानेका। क्या कहना चाहोगे? यह ही कि कुछ प्रेम दिखावोगे, मैं जारहा हूं, कुछ दुःख हीतो बताओगे। इनको छोड़ कर जा रहा हूं। अरे जो ऐसा रोताहो उसका कल्याण कहां रखा है? तो विवेकी सल्लेखनाधारी पुरुष मरण समयमें अपने मित्रोंका स्मरण नहीं करता।

(५) सल्लेखनाधारी द्वारा निदाननामक सल्लेखनातिचारका परिहार—सल्लेखनाका ५वां

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अतिचार है निदान। मैं अगली पर्यायमें सेठ बनूँ, देव बनूँ, इस प्रकारकी भावना बनाना निदान है, निदान करनेका कुछ फल नहीं है ठीक। हां यह बात होती है कि जिसके पुण्य विशेष है उसको होनी थी बहुत बड़ी बात और मांग लिया छोटी बात, तो उस छोटीकी भ्रान्तिहो जाती है, पर जितना पुण्य है गांठमें उसके, उतना कोई मांगे तो भी न मिलेगा, उससे अधिक कोई चाहे तो भी न मिलेगा। हां महान फल मिलनेका था लौकिक बातोंमें और उसने अल्प मांग लियातो अल्प मिल जाना उसके लिए बन जाता है। उस निदानसे कोई लाभ नहीं है। जो सम्यग्दृष्टि है उसके ऐसा भाव बनता नहीं हैकि मैं मरकर यह बनूँ, यह बनूँ, उसकी पर्यायमें बुद्धि नहीं अटकती। वह अपने स्वरूपमेंही रमनेका भाव और प्रोग्राम रखता है। तो मर कर मैं धनी बनूँ आदिक वाञ्छा करना चह निदान नामका अतिचार है। सल्लेखनामरणमें इस जीवने पर और परभावोंका त्यागकर केवल अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपका आलम्बन लिया है। जोमैं सहज अपने सत्त्वसे हूं सामान्य ज्ञान प्रतिभासमात्र, उस ही में अनुभव करता मैं यह हूं। यह है महान् पुरुषार्थ। धर्म इसही भावनासे है। अन्यजो बातेंकी जाती हैं सो इसही सिद्धिके लिएकी जाती हैं। अगर इस सहज स्वरूपकी सिद्धिका लाभ नहीं है तो धर्मके जितनेभी कार्य किए जाते हैं पूजाहो, बंदनहो, यात्राहो, जो कुछ भीहो, वे धर्मका रूप नहीं बन पाते। थोड़ा मंद कषाय हो तो पुण्य बंध जाएगा। सो यों समझिए कि पुण्यतो अन्य कार्योंमें भी बंध जाता, किसी भूखेको खिला दिया आदिक कार्योंमें पुण्यही बंधता है कुछ और मंद कषाय हुईतो अन्य धार्मिक कार्योंमें भी तनिक पुण्य अधिक बंध गया, मगर धर्म नहीं मिल पाता है। जिसमें आत्माके स्वरूपका परिचय नहीं है। उस स्वरूपमें ही यह मैं हूं, ऐसी भावना नहीं बनती, न लक्ष्य बनता, उसको धर्मका मार्ग नहीं मिल पाता।

ज्ञानस्वभावकी आराधनाका अन्तिम फल निर्वाण—यह सल्लेखनाधारी पुरुष बाह्य समस्त ग्रन्थोंका त्यागकर याने परिग्रहको त्यागकर एक स्पष्ट ज्ञानमात्र स्वरूपका आलम्बन रखता है। समस्त देहादिकका ममत्व छोड़कर संन्यास धारण कर रहा है। उसको जीनेकी इच्छा, मरनेकी इच्छा, ऐसा अतिचार कहां सम्भव है। यह मरण और नए जन्मका अवसर एक बहुत बड़ा परिवर्तन है और इस आधारमें यदि चित्तमें प्रसन्नता है, आत्मामें समता है, बाहरी पदार्थोंमें ममता नहीं हैतो यह उसके लिए इतना बड़ा उत्सव है कि इससे बढ़कर मेरे लिए कोई उत्सव नहींहो सकता। तो ऐसे सल्लेखना महोत्सवके समय यह सल्लेखनाधारी पुरुष इन ५ अतिचारोंसे रहित होकर चार आराधनाओं में लग रहा है। कोई इच्छा नहीं है, यहही तपश्चरण है। यहही आत्मस्वरूपका निरखना तपश्चरण कहलाता है, यह ही मेरा रत्नत्रय है। ऐसी आराधना सहित यह जीव शरीरसे पयान करता हैतो वह महान ऋद्धिवाला देव बनता है। सो वहां पर भी चूँकि धर्मके संस्कारमें रहकर मरण कियातो देव पर्यायमें भी उस धर्मका संस्कार चलता है जिससे उसका उपयोग भोगोंमें न रमकर जिनेन्द्र भक्तिमें, कल्याण महोत्सवमें, अकृत्रिम चैत्यालयोंकी यात्रामें, वंदनामें अथवा धार्मिक सभावोंमें, तत्त्वचर्चामें उनका समय व्यतीत होता है। इस समय कोई विशिष्ट धर्मसाधना बनाएतो उसको देवगतिमें ही जन्म लेना पड़ेगा, वह जन्मभी अच्छा नहीं है, यह जान रहा है तो भी और क्या गतिहो, पर वहांभी जाकर अप्सराओंमें न रमना, विशेष कोई विकल्प न करना, कोई ऋद्धि आदिककी तृष्णा न जगना ऐसा उसका सद्विचार रहा करता है। सो वहां सागरों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर्यन्त आरामसे रहता है। अन्तमें आयुका क्षय होनेपर यह मनुष्यभव प्राप्त करता है। सो जैसे यहां देखते हैं किसी बालकको कि वह बड़ा गम्भीर है, बचपनमेंही उसमें अनेक गुण आए हैं तो यह अनुमान होता है कि यह किसी अच्छे पूर्वभवसे आया हुआ जीव है। सो ऐसा वह ज्ञानी मनुष्यभव पाकर वैराग्यसे वासित होकर निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुद्रामें धर्म साधना करके मोक्षको प्राप्त करता है। तो आखिरी सर्वोत्कृष्ट उपादेय स्थिति है मोक्ष। तो उस मोक्षमें क्या स्थिति होती है, जीव कैसे रहते हैं, उस सबका अब वर्णन करते हैं।

चौथा अधिकार
निःश्रेयस-मोक्षका स्वरूप

निःश्रेयसमभ्युदयं निस्तीरं दुस्तरं सुखाम्बुनिधम्।
निःजिवति पीतधर्मा सर्वेदुःखैरनालीढः ॥ १३० ॥

धर्माचरण वाले भव्यात्मावोंको अभ्युदयपूर्वक मोक्षका लाभ—अपने जीवनमें व्रत, तपश्चरण, संयम करने वाले और मरण समयमें सल्लेखना धारण करने वाले पुरुषके परिणामोंकी निर्मलताके प्रतापसे यह जीव उत्तम कुल भव पाकर मनुष्यभवमें निर्ग्रन्थ व्रत लेकर अन्तस्तत्त्वकी अभेदोपासनाके बलसे मोक्षको प्राप्त होता है। यह सब आत्माके सहजस्वभाव रूप धर्मकी दृष्टिका और उस धर्ममें मग्न होनेका प्रताप है। इस मोक्षमें यह जीव सर्व दुःखोंसे मुक्त होकर आनन्दामृतका पान करता है इसीको कहते हैं निःश्रेयस। श्रेयस मायने कल्याणके हैं और निःका अर्थ है सम्पूर्ण रूपसे। सर्वरूपसे कल्याणमय स्थितिको निःश्रेयस कहते हैं। यह जीव अभ्युदयको प्राप्त होकर निःश्रेयसको प्राप्त होता है। वह अभ्युदय क्या है? उत्तम देवपर्यायमें उत्पन्न होना और वहां असंख्यात वर्षों तक आराममें रहकर धर्मकी प्रीति करके प्रसन्न रहना। स्वर्गोंमें जो दक्षिण दिशाके इन्द्र हैं वे एक भवावतारी होते हैं। एक भव मनुष्यका पाकर मोक्ष जाते हैं। लोकांतिक देव एक भवावतारी होते हैं। पंच अनुत्तरमेंसे चार अनुत्तरके देव दो भवावतारी होते हैं, मनुष्य के दो भव पाकर मोक्ष जाएँगे। सर्वार्थसिद्धिके देव एक भवावतारी होते हैं। श्रावक १६ स्वर्ग तक उत्पन्नहो सकते हैं। मुनिजन सर्वार्थसिद्धि तक उत्पन्न होते हैं। तो यह श्रावक जिसनेकि निर्दोष विधिसे जीवनमें व्रतका पालन किया और अन्त समयमें सर्व ममत्व दूर कर अपने स्वरूपमें स्थिर होता, ऐसा पुरुष मरण करके १६ स्वर्ग तक उत्पन्न हो लेता है। उसमें कौन श्रावक किस स्वर्ग तक जा सकता है यह संहननके अनुसार निर्णय है। जैसे छठे संहनन वाला श्रावक ८वें स्वर्ग तक उत्पन्नहो पाता है। यह संहनन आज है सो आजका श्रावक उत्तम परिणामसे रहाहो और अन्तमें समाधिमरण कियाहो वह ८वें स्वर्ग तक जासकेगा।

सम्यग्दृष्टि पुरुषोंकी देव और मनुष्योंके अभ्युदयको पाकर निर्ग्रन्थ होकर मोक्ष पानेकी रीति—प्रायः ऐसी संख्या अधिक है सिद्ध होने वालोंमें किजो मनुष्यपर्यायसे देव पर्यायमें गए और देव पर्यायसे मनुष्य होकर मोक्ष गए। उनकी संख्या उन सबसे अधिक है जो नरक से आकर मनुष्य होकर मोक्ष गए या तिर्यञ्चसे मनुष्य बनकर मोक्ष गए या मनुष्यसे मनुष्य बनकर मोक्ष गए। इन तीनोंसे संख्या

Report any errors at vikashd@gmail.com

उनकी अधिक हैजो देव पर्यायसे आकर मनुष्य होकर मोक्ष गए। मोक्ष जाने वाले धर्मप्रेमी जीव ही तो होते हैं। और जिनको धर्ममें रूचि है ऐसे पुरुष देवपर्याय पाएँ और वहांसे चलकर मनुष्य होकर मोक्ष जाए यह हुआ करता है। प्राय: क्योंकि कोईभी सम्यग्दृष्टि व्रती मनुष्य यदि पहिले आयु न बंधी हो तो अन्तमें देवायु बांधकर देवगतिमें जाएगा या देवायु बांध ली हो पहलेतो देवगतिमें जाएगा। सम्यग्दृष्टि मनुष्य भी सम्यक्त्वके रहते सहते आयु बांधेंगे देवायुही बांधेंगे। धर्मप्रेमी आत्मा ही मोक्ष जाते हैं और उनके देव पर्याय पाना प्राय: होता है। सो यहां तकका संकेत दिया है कि जिसने धर्मका आचरण किया है ऐसा धर्मात्मा श्रावक स्वर्गमें महर्द्धिक देव होता है और वहांसे चयकर मनुष्योंमें उत्तम मनुष्य होता है। धनिकहो, राजाहो, ऐसा ऊंचा भव पाकर फिर वहांसे विरक्त होकर संयम अंगीकार करके समाधिबलसे निर्वाण की प्राप्ति करते हैं।

निर्विकार निर्लेप निस्तरंग सिद्ध भगवंतोंकी शाश्वत नि:श्रेयसरूपता—वह नि:श्रेयस तीर (तट) रहित है अर्थात् वह मोक्षपर्याय कभी मिटेगा क्या? न मिटेगा, उसका किनारा न आएगा। अनन्त काल तकवे सिद्ध अवस्थामें रहेंगे। अब जरा अपने आप पर दया करके अपनी बात निरखेंकि मुझको क्या ऐसाही कर्मसहित रहकर संसारमें जन्म मरण करना है या सारे विकल्प छोड़कर एक आत्मदृष्टि सहित इस तत्त्वज्ञानके बलसे अपनेको निर्मल बनाना है। भव-भवमें नए-नए जीव मिलते हैं। स्त्री, पिता, माता, पुत्रादिकके रूपमें जो असंज्ञी जीव हैं वहांतो यह नाता नहीं चलता, पर संज्ञी जीवोंमें मनुष्य और तिर्यञ्चोंके ये नाते चलते हैं और देवोंमें भी माता पिता पुत्रतो नहीं होते मगर देवांगनाएँ संग रहती हैं। तो हर एक भवमें नए जीव मिले और वहां मरनेकी आदतके कारण उनसे मोह बढ़ाया, अन्तमें वियोग होगा, मरण होगा, फिर दूसरे जीव मिलेंगे। तो नये-नये जीव और प्राणियोंको अपना कुटुम्ब मानकर मोह करनेका कष्ट करते रहना यह क्या इस भगवान आत्माको शोभा देता है? व्यर्थही क्यों बन बनकर दु:खीहो रहा है। आनन्द स्वरूपतो स्वयं है। अपने स्वरूपकी सुध न करके क्रोध, मान, माया, लोभके वश होकर बाह्य पदार्थोंसे राग बढ़ाना, द्वेष करना ऐसी बेकारकी चेष्टाएँ करके दु:खी होते रहनाही पसंद है क्या? अथवा सिद्ध अवस्था प्राप्त कर अनन्तकालके लिए धर्मास्तिकाय आदिक शुद्ध पदार्थोंकी तरह सदैव शुद्ध रहना है। निर्विकार होनेकी शुद्धताको पसंद करें अन्यथा यह जीवन बेकार रहेगा।

सिद्धपना पानेके लिए एकत्वविभक्त अन्तस्तत्त्वके अनुभवकी अनिवार्यता—जो सिद्ध भगवन्तोंकी शुद्धताको पसंद करता है और उसका प्रयत्न चाहता है तो उसे यहां ही निरखना होगा अपनेको कि सर्व चेतन अचेतन पदार्थोंसे निराला हूं। 'केवल अपने सहज ज्ञानस्वरूप हूं', यह बात क्या अपनेमें दृढ़ताके साथ जमी हुई है? यदि नहीं जमी हुई है तो यह बड़े खेदकी बात है। केवल ऊपर धार्मिक बाना रखने से तो कार्य न बनेगा। जैसे कहते हैं कि कागजोंके फूलसे खुशबू नहीं आती ऐसेही इस बनावटसे सच्चाई प्रकट नहीं हो सकेगी। बनावट क्या है? पर्याय बुद्धि होते सन्ते जो कुछभी चेष्टाएँ हैं, मिथ्या भाव हैं। बनावटी पुरुष धर्ममें स्थित नहीं है। श्रावकभी अपने देहको देखकर और कुछ अभिमान रखे, मैं रोज जाप देता हूं, मैं रोज पूजा करता हूं, इतना धर्मका कार्य करता हूं, उपवास

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता हूं। १०-१० दिन तक उपवास कर लेता हूं, भीतर नाता लगा है देहसे और देहको देखकर ही मान रहा कि यह मैं हूं और उस मैंकी बात कर रहा तो क्या वह धर्म मार्गमें स्थित है? नहीं स्थित है।

सहजज्ञानानन्दमय अन्तस्तत्त्वके सत्याग्रहमें आत्मप्रगति—भैया, जो व्रत तपश्चरण आदिककी भी क्रियाएँ हैं उनकोभी यदि कोई हठ पूर्वक पालता है, हठपूर्वक पालनके मायने उन व्रतोंमें एकान्त बुद्धि रखते हैं, ऐसी समितिसे ही चलना है, इसीसे मोक्ष मिलेगा। मैं अपने व्रतोंको निर्दोष पालूँ, रंचभी कमी नहीं रहे ऐसी मन वचन कायकी चेष्टा हो। ऐसा हठ पूर्वक व्रतोंका पालन धर्म मार्गमें नहीं बताया। व्रततो निर्दोष होना चाहिए मगर व्रतोंके पालनके विकल्पकी हठ न होना चाहिए। व्रतोंके पालनेकी विकल्पकी हठ उनके होती है जिनको आत्माके सहज स्वरूपका परिचय नहीं मिला और उस सहज चैतन्य स्वरूपके उपयोग द्वारा अलौकिक आनन्दका अनुभव नहीं जगा उनके केवल व्रतोंमें हठ रहती है, पर जिन्होंने आत्माके सहज चैतन्य स्वभावको जाना है उसकी बारबार दृष्टि करके स्पर्श किया है अलौकिक आनन्द पाया है उस पुरुषके जब मन वचन कायकी चेष्टाएँ होती हैं तो व्रतके अनुसार होती हैं, और उसके ये क्रियाएँ सुगम सहज थोड़े प्रयाससे चलती रहती हैं। ऐसी धर्मदृष्टि पूर्वक व्रत पालनकर मोक्ष मार्गमें बढ़ता है और अज्ञानवश हठपूर्वक द्रव्यव्रतोंका पालन विनय व नम्रताको नहीं आने देता कि जिस नम्रताके कारण यह उपयोग अपने सहज स्वरूपकी ओर नम जाय, अभिमुखहो जाए। जैसे तीव्र गर्मीमें समुद्रका जल भाप बनकर उड़ता है और वह जल भापकी शकल बनकर आसमानमें डोलता रहता, जिसे लोग कहते हैं बादल। इन बादलोंका डोलते रहना चलता रहता है। बादल चारों दिशावोंमें भ्रमण करते हैं, जब इन बादलोंमें नरमी आती है, वर्षा ऋतु आती हैतो ये बादल नीचे बरस जाते हैं। बरसनेके बाद यह पानी नीचेकी गलीसे चलता हुआ अर्थात् नीचे ढलावसे ढलता हुआ आखिर उसी समुद्रमें मिल जाता है। समुद्रसे भाप उठी और ये बादल उड़ते रहे, गड़गड़ाते रहे, भटकते रहे और जबये नम्र होकर बरसे बहेतो नीचेकी ओर बहकर अन्तमें समुद्रमें ही मिल जाते हैं। ऐसेही हम आप जीवोंका उपयोग इच्छा विषय कषायकी गर्मीके कारण संतप्त होकर अपने ज्ञान समुद्रसे हटकर बाहर डोलता है। गड़गड़ाता है, दुःखी होता है, भटकता रहता है। वह भटकने वाला उपयोग जब कभी नरमी पाए, नम्र बने अपने स्वरूपकी सुध हो तो यह उपयोग बरषकर नीचे आकर अपनी ओर आकर नम्रता और विनयकी गलीसे बहकर इस ही ज्ञान सरोवरमें जब मिल जाता है तो यही कहलाया समाधिभाव। ऐसी उपासनासे यह जीव निर्वाण प्राप्त करता है।

परमसुखाम्बुधिकी दुस्तरता—यह सुखसमुद्र दुस्तर है, जिसको पार करना, तिरना कुछ मुश्किल है, पर एक ज्ञानकुञ्जी मिलने पर कुछ मुश्किल नहीं है। खुद ज्ञानस्वरूप है और खुदका ही ज्ञान न बन पाए यहतो उस जैसा अचम्भा है जैसे पानीमें मछली रहती है और वह प्यासी बनी रहे। यह कितना अन्याय चल रहा है अपने आप परकि ज्ञानस्वरूप होकरभी स्वयंको नहीं जान पा रहे और राग द्वेषवश बाह्य पदार्थोंके जाननेका नाटक कर रहा है। जो भव्य जीव अपने आपके स्वरूपको जानता है, उसहीकी धुन बनाता है, उसहीकी हठ करता है वह पुरुष योग्य तपश्चरण आदिक विधिसे निर्वाणको प्राप्त होता है। आग्रहकी हठहोतो वह अपने आपके सहज स्वरूपकी दृष्टिके लिए हो। अन्य जगहकी हठ, स्वरूपकी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

बेसुधी बिल्कुल न बने। जिसको स्वरूपकी सुध है उसकी हठ अपने आपके स्वरूपके लिए होती है। यह निःश्रेयस कठिनतासे करने योग्य है, क्योंकि इसका पार नहीं है फिरभीजो भव्य आत्मा अपने आपके स्वरूपकी अनुभूतिके लिएही कमर कसे हुए रहते हैं, पौरुष शील रहते हैंवे निर्वाणको अवश्य प्राप्त करते हैं। जब हमारे पौरुषसे जिसको भी पौरुष समझ रखा है, जो सोचते हैं उन कामोंको कर डालते हैं। जो पराधीन हैं, जिनपर हमारा अधिकार नहीं है वे कार्य हमारे विचार और परिश्रमसे कैसे हो जाते हैं। यह विषय एक अलग है, पर हां ऐसा योग हो जाता कि इतना परिश्रम किया वहां कार्य बन गया फिर जो स्वाधीन कार्य है उसके ही द्वारा उससे अलग मेरेमें कार्य होता है। इतना सरल स्वाधीन कार्य हम पौरुषसे न कर सकें यह कैसे होगा? अवश्यही कर सकते हैं।

अन्तस्तत्त्वके परिचयके बलसे मोहरागद्वेषोंका प्रक्षय—लोग सोचते हैं कि मोह और राग छोड़ना बड़ा कठिन है किन्तु जिसने मोह राग रहित ज्ञानस्वभाव मात्र निज स्वरूपको पहिचाना है उसका मोह राग छूट जाता है। परिस्थितिवश कभी कोई राग करना पड़ रहा है तो वह कब तक करना पड़ रहा होगा, वहभी खतम होगा ही। जैसे किसी वृक्षको जड़से उखाड़कर गिरा दिया जाय तो उखाड़ दियां जाने पर भी उसके वे पत्ते हरे तो रहते हैं पर कब तक हरे रहेंगे? एक दिन रहलें, दूसरे दिन रहलें, आखिर सूखही जाते हैं, ऐसेही जिस व्रती श्रावकका मोह गल गया है, आत्मानुभव जग गया है, सहज स्वरूपमें रमकर आनन्द पाया है उसको संहनन आदिककी निर्बलताके कारण संगमें रहना पड़ रहा है। गृहस्थीमें रहना पड़ रहा है और वहां कुछ राग होता है तो वह राग कब तक टिकेगा? टिक नहीं सकता।

धर्मधारीके कषायोंके लगावकी असंभवता—धर्म पालनके जितने भी अंग हैं उन सबका मूल है स्वभाव प्रतीतिरूप धर्मपालन। धर्मपालन यह हैकि अपने सहज स्वरूपमें 'यह मैं हूं' इस प्रकारका अनुभव बने। मैं अन्य कुछ नहीं हूं। परमार्थ तत्त्वको देखिए—घरमें रहने वाले माता-पिता, पुत्र-स्त्री वाला अथवा किसी पार्टी वाला मैं नहीं हूं। व्यापारी नहीं, सर्विस वाला नहीं। बालक, वृद्ध, जवान आदिक किसीभी रूप वाला मैं नहीं, मैं गृहस्थ नहीं, मैं त्यागी नहीं, मैं मुनि नहीं, मैं इन किसीभी रूप नहीं हूं। ज्ञानस्वभाव मात्र हूं, यह जिसकी दृष्टि रहती है वह पुरुष किस पर क्रोध करेगा? क्रोध करनेका उसका अब प्रयोजन क्या रहा? जगतके कुछ भी समागम उसके प्रयोजनसे अलगहो गए, वह किस बात पर मान करेगा? किसको मान बताएगा? किसमें बड़ा बनना है? यह सब मायारूप चक्र है? यह मैं आत्मा अपने आपमें अविकार स्वभाव ज्ञानमात्र पदार्थ हूं। उसके स्पर्श बिना, अनुभव बिना, यह उपयोग बाहरमें कहां कहां भटक कर दुःखी होता? और दुःखी हो इतना ही नहीं, न जाने कैसे-कैसे देहोंकी विडम्बना पायी, पेड़ बना, लट केंचुवा बना, चींटी, चींटा, बिच्छू आदि बना, ढंग बिढंगे पशुपक्षी बनेतो यह भगवान आत्माके शोभाकी बात है क्या? यह सब कलंक है। यह देह कलंक है। देहसे पृथक् अंतस्तत्त्वमें जिस भव्यात्माके आत्मबुद्धि हुई है उसके लिए नामका क्या प्रश्न है? भलेही लोकव्यवहारके लिए नाम रखा है, व्यवहार चल रहा है, पर उसको कहींभी मान नामकी बात नहीं है। अपने सहज ज्ञानस्वरूपकी अनुभूति पाने वाले भव्य जीव मायाचार कैसे कर पाएँगे? जैसे मोहियोंको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यह संदेह होता कि कोई भी मनुष्य मोह रागद्वेष कैसे छोड़ सकता है? ऐसेही यह सन्देह बनाइए कि ज्ञानी पुरुष सहज अंतस्तत्त्वका रुचिया पुरुष कैसे क्रोध मान माया लोभ कर सकता है? मायाचार एक बहुत बड़ा कलंक है। जब तक मायाकी प्रकृति रहती है तब तक धर्मलाभ नहीं मिल सकता। चार कषायोंमें माया कषायको शल्यकी संज्ञादी है। क्रोध मान, और लोभको शल्य नहीं कहा पर मायाको शल्यमें बताया। ज्ञानी पुरुषको माया करनेका कुछभी प्रयोजन नहीं। किसमें मायाचार करना? जगतका कौनसा काम पड़ा है जिस लौकिकके होनेसे, करनेसे आत्माका अभ्युदयहो जाए। जब कुछ प्रयोजन न रहा तो यह मायाचार क्या करेगा? ज्ञानी पुरुषको अन्तः तृष्णाभी नहीं रहती। जिसने देहसे निराला अपनेको अनुभवा है उसको फिर किस विषयकी तृष्णा है? वह इन्द्रिय विषयको चाहताही नहीं है। भलेही जीवन है तो आहार करना पड़ता है। पर ये तृष्णाके रूप नहीं है वह धर्मके रूप हैं। एक पुरुष आहार करके पाप बांधता है और एक पुरुष आहार करके पुण्य बांधता है। जो संयमकी रक्षाके लिए जीवनको आवश्यक जानकर एक जीवन चलानेके लिएही आहार करता है वह पाप नहीं बांधता है, क्योंकि लक्ष्य उसका उत्तम है। और जो रसास्वादके लिए आहार करे वह पाप बांधता है। ज्ञानी विवेकी जीवको लोभ कषायका कोई प्रयोजन नहीं है, सोयह आत्मामें मग्न होकर सर्व दुःखोंसे अछूता होकर निःश्रेयसको प्राप्त करता है।

जन्मजरामयमरणैः शौकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।
निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यं॥ १३१॥

अपने जीवनमें व्रत पालन करने वाला और अन्त समयमें सल्लेखना धारण करने वाला पुरुष अनेक अभ्युदयोंको प्राप्त कर मोक्षको प्राप्त करता है पूर्व छन्दमें यह बात कही गई थी, उसीके सम्बंधमें यहां यह बतला रहे हैं कि वह निःश्रेयस मायने निर्वाण किस प्रकार का है। उसको विशेष लक्षण पूर्वक बतला रहे हैं। निःश्रेयसका सीधा अर्थ है इष्ट कल्याण मय, जिसमें अपना पूर्ण कल्याण बसाहो उसे कहते हैं निश्रेयस। तो पूर्ण कल्याण निर्वाणमेंही है, इस कारण निःश्रेयसका अर्थ निर्वाण कहा जाता। वह निर्वाण निःश्रेयस है, इष्ट है, पूर्णकल्याणमय है। इस निर्वाणमें अब जन्म लेना न रहा। सबसे कठिन विपत्ति है जन्म धारण करना, जिस विपत्तिकी ओर प्रायः जीवोंकी दृष्टि नहीं हैकि यहीतो दुःख है। जन्म हुआ तो जीवन रहा, जन्मका दुःख, जीवनका दुःख। फिर मरण होगा वह दुःख, फिर इतनेसे छुट्टी नहीं मिलती, फिर जन्म होगा, वहीका वही क्लेश, इस कारण जन्मही सर्व क्लेश है। अब सिद्ध प्रभु जन्मसे रहित हैं, जन्म होताही नहीं है, अरहंत भगवानभी जन्मसे रहित हैं। भलेही अरहंत प्रभुका पंडितपंडितमरण होता है जिसे निर्वाण कहते हैं, पर उसके बाद जन्म नहीं होता। सिद्ध जन्मसे रहित हैं और आगे जन्म होनेका कोई सवालही नहीं है। जीवका जन्म नहीं हुआ करता। जीवतो स्वयं स्वतंत्र परिपूर्ण सत् है, बस नए शरीरमें जीवका पहुंचना इसहीको जन्म कहा करते हैं। सो यह बड़ी विडम्बना है जीव की कि ऐसा परमात्मस्वरूप होकरभी जन्म लेकर यह नाना विडम्बनाओं रूप बन जाता है। संसारके कैसे-कैसे जीव, उनकी कैसी कैसी अवस्थाएँ ये सब विडम्बनाएँ इस जन्मके कारण हैं। सो जन्मसे रहित स्थितिही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

निर्वाण है, अन्यथा निर्वाणका कुछ अर्थ नहीं। कुछ लोग बैकुण्ठकी कल्पना करते हैं कि यह जीव तपश्चरण करके कर्मोंसे छूट जाता है, बहुत समय तक छूटा रहता है, उसके बाद संसारमेंही आना पड़ता है। फिरसे कर्म लग जाते हैं, जन्महो जाता है। पर ऐसे जन्मकी जहां शंका है उसे निर्वाण कैसे कहा जा सकता? अथवा नाम धरदें निर्वाणका लेकिन निःश्रेयसतो न रहा, परम कल्याण रूप न रहा। यह तो और मुसीबत रही, किसीसे कहा जाएकि हम तुमको करोड़पति बना देंगे, १०—५ वर्ष बादमेंजो तुम्हारा निजका घर है, जोकुछ तुम्हारे पास दंड कमण्डल है वह सबभी छीन लिया जाएगा। तो ऐसा धनी होनेकी कोई इच्छा करता है क्योंकि हां हां बनादो, १०—५ वर्ष धनिक बनकर देखही लेंगे, पीछे भिखारी बन लेंगे ऐसा कोई नहीं चाहता। तो ऐसा बैकुण्ठकि जहां अनगिनते वर्षों तक रहे, पर उसे जन्म लेना पड़ेतो वह निःश्रेयस नहीं कहला सकता। निःश्रेयस जन्मसे रहित हुआ करता है।

निःश्रेयसकी जरापरिमुक्तता—निःश्रेयसमें जराका क्या काम। जराका अर्थ है बुढ़ापा, और धातुसे अर्थ निकलता है जीर्ण शीर्ण हालत बनना। जहां शरीरही नहीं है वहां जराका क्या प्रश्न? जरातो अरहंत अवस्थामें भी नहीं हुई। कोई मुनिराज बूढ़ेहों और उनको केवलज्ञानहो जाएतो केवलज्ञान होने पर फिरवे बूढ़े न रहेंगे, उनकी हड्डी पसली निकली हुई न रहेंगी। उस पवित्रताका यह प्रताप है कि वह शरीरमनोज्ञ दर्शनीयहो जाएगा अन्यथा अरहंत भगवान मिलें और उनके हड्डी पसली निकलीहों तो यह कुछ अटपटासा लगता है कि ऐसे प्रभुमें भक्ति विशेष कहांसे बनेगी? जैसे मुनियोंके प्रति भक्ति है वही सीमामें रहेगी। ऐसा होताही नहीं है, १२वें गुण स्थानमें जो मुनिराज हैं वहां शुरु सेही शरीरकी निर्दोषता होने लगती है, निगोद जीवोंका जन्म रुकने लगता है, कम होने लगता है, और १२वें गुणस्थानके अन्तमें इस शरीरमें कोई निगोद जीव नहीं रहते और उसके साथ-साथ धातु उपधातुमें मलिनता न रहे यहभी साथ चल रहा है। तो अरहंत होनेके प्रारम्भमें उनका शरीर स्फटिक मणिकी तरह कान्तिमान और छायारहितहो जाता है। सिद्ध भगवान जरासे रहित हैं।

निःश्रेयसकी आमयपरिमुक्तता—प्रभुके रोग नहीं होता। रोगतो अरहंत प्रभुकेभी नहीं है जहांकि शरीर है। फिर सिद्ध भगवानकेतो शरीरही नहीं है, रोग कहांसे आए? रोगादिक होनेका कारण कर्मका उदय है। और कर्मका उदय जब आता है जब बंधें, और ऐसा कर्म तब बंधा जब इसके भाव खराब हुए। तोजो आत्मा अपने भाव खराब करता है उसकेही रोग होता है। भलेही आज पुण्यके उदयमें भावभी खोटे किए जा रहे तो भी रोगादिक नहीं सता रहे, अन्य अभ्युदयभी चल रहे पर वे चलेंगे उतनेही दिन तक जितने दिन तक पूर्वबद्ध कर्म साथ दे रहे। अन्तमें हालत वही होगीजो आज भाव खोटे किएजा रहे हैं। हमारा सबकुछ हमारे भावों पर निर्भर है, कोई बात कुछ समय बाद बनेगी, परजोभी मेरी सृष्टि होती है वह सब मेरे भावोंके अनुसार होता है इसलिए कह लीजिए कि यह आत्मा ईश्वर है, अपनी सृष्टि बनानेमें यह स्वतंत्र है। जीवनमें भाव गंदे न होना चाहिए। चाहे कुछ धन वैभव कमहो जाए, अन्य कुछभी स्थितिहो जाए, मगर भावोंमें निर्मलताही रहना चाहिए। भावोंमें बिगाड़ न आना चाहिए। तोजहां वीतराग निर्विकल्प समाधिका परिणाम रहा मुनिजनोंका, इसही समाधिभावमें अपने

http://sahjanandvarnishastra.org/

सारे क्षण लगाएँ जिसके प्रतापसे अरहंत अवस्था पायी और अन्तमें सिद्ध अवस्था पायीतो यह शुद्धोपयोग परिणामका फल है। सिद्ध प्रभु आमयसे रहित हैं।

निःश्रेयसकी मरणपरिमुक्तता—सिद्ध भगवान मरणसे रहित हैं। जो अवस्था पायी है सिद्ध प्रभुने वह धर्मादिक द्रव्योंकी तरह शुद्ध अवस्था है। जैसे आकाश अपने आपमें विशुद्ध है उसमें कोई लेप नहीं, विकार नहीं, ऐसेही सिद्ध प्रभुमें कोई लेप नहीं विकार नहीं। केवल एक विज्ञानघन यह आत्मा है जिसकी निरन्तर विशुद्ध ज्ञान परिणतियां चल रही हैं। यहांतो किसीभी वस्तुको जानने चलते हैं तो रागद्वेष इष्ट अनिष्ट भाव उसके साथ जुट जाते हैं। कैसा ही उपवासभी कियाहो, वहां जराभी इच्छा नहीं है खानेकी और न खाएगा, दृढ़ विचार है, पर जहां खुशबू आ रही है, मिठाइयां बन रही हैं, उस बीचसे निकल जाएतो उसका रंचभी भाव नहीं है कि मैं खाऊं, न शुद्ध खानेका है, अशुद्धकी बाततो दूर रही, पर वहांसे निकलने पर मनमें कुछ न कुछ बाततो आती ही है कि अच्छी मिठाई बन रही, बड़ा सुगंध है यों कुछ न कुछ कल्पना जग ही जाती है। और इसीलिए श्रावकोंको बताया है कि आश्रयभूत कारणोंसे वे बिल्कुल अलग रहें। कोई सोचे कि मेरेतो अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत है और अभ्यास तथा सामर्थ्यभी हमारा अच्छा हो गया, अब हमको क्या? कहींभी विचरें? किसीके भी बीचमें रहें, किसीसे भी अधिक बोलचाल बनाएँ, मेरेको क्या दोष? तो चरणानुयोग ऐसी आज्ञा नहीं देता। वह आश्रयभूत कारणोंका परिहार कर दूर रहनेकी आज्ञा देता है और उन कारणोंसे दूर रहकर अपने आपमें फिर ज्ञानस्वरूपकी साधना बनाइए। तो ऐसेही ऊंचे तपश्चरणके प्रभावसे अरहंत होकर सिद्ध अवस्था पायी है तो वह बिल्कुल आकाशकी तरह विशुद्ध अपने ज्ञानकी वर्तनामें ही बना रहता है।

सिद्ध भगवंतोंके विकृतिके लेशकी भी अत्यन्त असंभवता—भैया ! यहांतो इस बात पर आश्चर्य होता कि कैसे ज्ञान शुद्ध बन जाता और निर्विकार ज्ञातादृष्टा रह जाता? वहां इस बात पर आश्चर्य होगा कि सिद्ध प्रभुके ज्ञानमें रंचभी तरंग नहीं आती। यहांतो इतनी तरंगोंका, विकल्पोंका ढेर लगा रखा है वहां इसकी रेखा तकभी नहीं है। आश्चर्यकी क्या बात? जबकोई एक द्रव्य अकेलाही रह गया तो अब उस एकाकी द्रव्यमें विकल्पकी रंचभी गुंजाइश नहीं। हां केवल परमाणु द्रव्य है सो वह अकेला रह जाएगा तो भी उसका अन्य परमाणुओंसे बंधहो सकता, स्कंध बन सकता, आप यह तर्कणा करेंगे कि ऐसा क्यों हुआ। जब अकेलाही परमाणु रह गयातो जैसे जीव जब अकेलाही रह जाता है, इसके साथ कर्म शरीरका सम्बंध नहीं है तो वह तो कभी अशुद्ध नहीं होता। यह परमाणु क्यों अशुद्ध हो जाता? तो उसका कारण यह है कि परमाणुमें अशुद्धता होनेका कारण है परमाणुकेही स्निग्ध रुक्ष गुणका परिणमन। दूसरे पदार्थकी उपाधिहो सम्बंधहो तब वह विकार करेगा ऐसा परमाणुमें नहीं है, किन्तु परमाणुमें अपने आपकी ओरसे ही चिकनापन और रुखेपनकी डिग्रियां खूब बढ़ी हुई रहती हैं। तो जब बँधके योग्य स्निग्ध रुक्ष गुणकी डिग्रियांहो जाएँतो वह बंध जाता है, किन्तु जीवमें रागद्वेष आनेकी खुदमें कला नहीं है कि अपने आपके ही परिणमनसेये रागद्वेष कर रहे उपाधिकी क्या आवश्यकता है? उपाधिके होने परही उस प्रकारका कर्मविपाक होने परही रागद्वेष जगता है और परमाणुमें ऐसा नहीं है कि दूसरे परमाणुको कोई सम्पर्क, लगाव बने, कुछ बनेतो उसमें स्निग्ध रुक्ष

Report any errors at vikasnd@gmail.com

गुणकी डिग्रियोंके परिणमन हों। परमाणुमें स्निग्ध और रुक्ष गुण स्वयं है, शक्ति है और उसका निरन्तर परिणमन है। कभीभी ऐसा न होगा कि किसी परमाणुमें स्निग्ध अथवा रुक्ष गुण रहा ही नहीं, और रहता है तो अर्थ पर्याय चलनेके कारण उसकी डिग्रियांभी चलती हैं, बंधहो जाता है। पर रागद्वेष नामकी बात जीव के स्वभावमें है ही नहीं, औपाधिक थी। उपाधिके दूर होते ही रागद्वेष दूर होते हैं, अब उसको यह कभी जब रागद्वेष न जग सकेंगेतो उपाधि मिलनेका भी अवसर न आएगा। जब उपाधि नहीं है तो रागद्वेष नहीं है ऐसे शुद्ध आत्मा हैं वे सिद्ध प्रभु। उसमें मरणकी सम्भावनाही क्या है? सिद्ध प्रभु मरणसे परिमुक्त हैं।

सिद्ध भगवंतकी शोक और दुःखसे परिमुक्तता—सिद्ध भगवन्तके शोकका कुछ काम नहीं, वे सब शोकसे मुक्त हो गए और दुःखोंसे मुक्त हो गए। शोक और दुःख ये दोनोंही अनिष्ट हैं फिरभी इनमें अन्तर है किसीके दुःखहो और शोक न हो ऐसी ज्ञानकी स्थिति बन सकती है और किसीके शोक हो और दुःख न हो यहभी स्थिति बन सकती है स्थूल रूपसे। बारीकीसेतो जहां दुःख है कोई शोक थोड़ा बहुत होगा। जिसके शोक हैं उसके कोई दुःख होगा। मगर घटना लो, एक तत्त्वज्ञानी मुनिराज जिनके शारीरिक दुःख आया है, कुष्टहो गया है, शस्त्रवेदना आ गई, कितनीही वेदनाएँ आ गयी, दुःखहो गया, मगर उनको शोक रंच नहीं है और एक कोई धनी आदमी जिसके करोड़ोंका वैभव है, शरीरभी स्वस्थ है, अच्छा उसे पथ्य मिलता है, डॉक्टर भी है, उसे दुःख भी नहीं है, मगर भीतर शोक कितना बसाए है। कहीं राजा नाराज न हो जाए, कोई ऐसा कानून न बनादे, यह धन मेरा यों ही न पड़ा रह जाए यों कितनी ही तरहकी शंकाओंमें वह पड़ा हुआ है। दुःख तो उसे कुछ नहीं है। तो शोक और दुःखमें थोड़ा अन्तर है। इसलिए चिन्ता और विषाद ये अलग-अलग दोष बताए गए हैं। सिद्ध प्रभुमें न किसी प्रकारका शोक है और न कोई दुःख है। वह तो एकाकी अपने चैतन्य रससे परिपूर्ण हैं, वहां विकल्पही कुछ नहीं उठते, तो ऐसे शोक और दुःखसे परिमुक्तजो निर्वाण है वही वास्तवमें निःश्रेयस है। निर्वाणमें भयका भी काम नहीं है। जो भयसे परिमुक्त दशा है, वही वास्तवमें निःश्रेयस कहा जाता है। भला अमूर्त आत्मा कर्म और शरीरसे अत्यन्त पृथक् और अपनेमें विशुद्ध ज्ञानकी परिणतियोंमें जगते रहने वाला है अमूर्त आत्मामें भयकी गुंजाइश किस ओरसे है? जैसे कितना ही बड़ा तेज पटाका फोड़ें, बम फोड़ेंतो क्या आकाशमें भय आ जाएगा? नहीं। आकाशमें भय नहीं आता, वह अविचल रहता है, ऐसेही वह अमूर्त आत्मा निर्लेप आत्मा किसी भी परिस्थितिमें याने बाहरी पदार्थ कुछभी परिणमते रहें लेकिन यहां भयका काम नहीं है। तो वे सिद्ध प्रभु भयसे रहित हैं। भय नामकी एक संज्ञा है, उस भय संज्ञाकी दृष्टिसे भयकी संज्ञा ८वें गुण स्थान तक कही गई है। ८वें गुण स्थानके बाद भय किसीभी दृष्टिसे सम्भव नहीं है। जब यहां ९वें गुणस्थान वाले और ऊपरके गुणस्थान वाले मुनिराजजो शरीर सहित हैं धातु उपधातु वाले हैं, जिनके शरीरमें रोगभी सम्भव है उन तकके भी भयका रंच नाम नहीं है। फिर क्षीण मोह हुए बाद भयकी क्या कल्पनाएँ। अरहंतके क्या भय, सिद्ध प्रभुके क्या भय? यह अमूर्त शुद्ध ज्ञाताद्रष्टा रहने वाला सिद्ध प्रभु समस्त भयोंसे परिमुक्त है। निर्वाणमें ऐसी निर्भयता, निर्विकारता, निष्कम्पता, अविचलता रहती है। देखो यह है अपना असली धाम जहां पहुंचने पर इस

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीवको शान्ति रहेगी, वह उत्कृष्ट अवस्था, यही है सिद्ध पद। हम अरहंत सिद्ध नाम तो जपें और अरहंत सिद्ध होनेकी भावना चित्तमें न लाएँ तो उस नाम जपनेका अर्थ कितना सा रहा? ये अरहंत सिद्ध ये ही परिपूर्ण आनन्दमय हैं। यहही उत्कृष्ट दशा है, ऐसाही हमको होना चाहिए। सिद्ध हुए बादही निःश्रेयस कहा जा सकता है कि परमकल्याण इससे प्राप्त हुआ। यह श्रमण शुद्ध आत्मीय आनन्दसे भरपूर है। जहां केवल आत्मउपाधिका और विभावका लेप नहीं, ऐसा निरञ्जन वह केवल अमूर्त आत्मा निरन्तर शुद्ध ज्ञानरूप परिणम रहा है। जहां विकल्प तरंग रंग कुछभी सम्भव नहीं है उस स्थितिमें ही अनन्त आनन्द है, और वह आनन्द क्या है? क्या केवल कहने मात्रके लिए है कि कोई दुःख न रहे यही आनन्द है? क्या दुःखके अभाव रूपही आनन्द कहलाता है? वहांके आनन्दको कौन समझ रहा है यहां? सोबात यह हैकि हम आप लोगोंको कैसे समझाया जायकि प्रभुके अनन्त आनन्द हैं? वह समझायाजा सकता है निराकुल शब्द कहकर। क्योंकि आकुलताओं और दुःखका हम आपको खूब परिचय बना हुआ है, और जानते हैं कि ये बड़ी कठिन वेदनाएँ हैं। और जब यह समझायाकि ये आकुलताएँ वहां रंचभी नहीं रहती हैंतो समझमें आता हैकि हां बहुत अच्छी स्थितिमें है अरहंत और सिद्ध, मगर इतना नहीं है कि उनके कष्ट नहीं है, आकुलता नहीं हैं सोही बातहो, वेतो हैं ही पूर्ण, मगर परम आह्लाद रूप परिणमन निरन्तर बना हुआ है। अब वह परम आह्लाद कैसा है, वह आह्लाद पाए बिना स्पष्ट रूपसे समझमें नहीं आ सकता। अनुमान किया जाता है, प्रमाणसे समझा जाता है मगर परम आह्लाद सिद्ध भगवन्तका, प्रभुका क्या है, इसके बतानेके लिए कोषमें कोई शब्द नहीं है। सही ढंगसेतो हम आप एक रोजके खानेमें आने वाली मिठाइयोंका स्वादभी दूसरेको नहीं बता सकते, पर वहां इलाज है दूसरेको समझाने का कि रसगुल्लेका कैसा स्वाद होता है? तो बहुत देर तक दिमाग लड़ानेसे क्या फायदा? एक रसगुल्ला उसके मुखमें खिला दीजिए, बस वह कह उठेगा कि हां हम समझ गए कि ऐसा मीठा होता है। तो सिद्ध प्रभुके जो आनन्द हैं उस आनन्दको जो अनुभव करता वह बोल नहीं सकता, जो बोलता है उसको आनन्दका पता नहीं है। तो प्रभुके आनन्दकी महिमा कौन कह सकता है? हम आपका जीवन तबही सफल है जब सांसारिक विषयोंसे अपना उपयोग हटाएँ और इसकी धुन बनायें कि मुझे तो सब लेपों से रहित होकर अरहंत सिद्धकी तरह निर्दोष केवल अकेला रहना है, दूसरा और कोई प्रोग्राम नहीं है। यही भावना इस जीवनमें बनाइए और बढ़ाइये, वह इस जीवनकी एक अलौकिक देन होगी, अन्यथा जैसे अनेक जन्म पाए इसी तरह यह जन्मभी बेकार चला जाएगा।

विद्यादर्शनशक्तिस्वास्थ्यप्रह्लादतृप्तिशुद्धियुजः।
निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम्॥ १३२॥

आत्मविकासका मूल सहज परमात्मतत्त्वकी उपासना—अपने जीवनमें सम्यक् श्रद्धा सहित, तत्त्वज्ञानकी आराधना सहित जिसने सदाचारका निर्दोष पालन किया है वह पुरुष निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर समाधि बलसे निःश्रेयसको प्राप्त करता है। उस निःश्रेयसके पात्रके सम्बन्धमें यहां प्रतिपादन किया है। यह भव्य आत्मा जिसने एकत्वविभक्त कारण समयसारका अभेद अनुभव किया वह पुरुष कर्मोंका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विध्वंस करके निर्वाणको प्राप्त होता है। जिस परमात्माकी आराधनासे मुक्ति प्राप्त होती है वह परमात्मा कहीं बाहर नहीं है। जो परमात्मा हुए हैं, जो बाहर अवस्थित हैं उन परमात्माकी आराधनासे दो लाभ मिलते हैं। एकतो उस शुद्धोपयोगकी आराधना जिसके बाद शुद्धोपयोग बनता है। दूसरा लाभ यह है जोकि उस प्रथम लाभसे ही सम्बंधित है कि प्रभुके जब उन शुद्ध गुणोंका स्मरण होता है तो वह परिणमन इतना विशुद्ध है कि स्वभावके पूर्ण अनुकूल है वे और इस अनुकूलताके कारण प्रभुके शुद्ध गुणोंका स्मरण करके स्वभावमें आनेमें सुगमता रहती है। आत्माका अनादि अनन्त अहेतुक असाधारणचैतन्य स्वभाव कारण समयसार है। यही स्वभाव सहज परमात्मतत्त्व है, इसकी अभेद आराधना जिसके बनी है वहही कर्मोंका विध्वंस कर निर्वाणको प्राप्त होता है, तो ऐसा निःश्रेयस बन कर वे किस तरह रह रहे है निर्वाणमें, उनको इस रहनेकी विधिका विशेषण देकर वर्णन किया गया है।

अनन्तज्ञानयुक्त परमात्माका निःश्रेयसमें आवास—यह पवित्र आत्मा अनन्त ज्ञानसे युक्त है, जिस ज्ञानका अन्त न आए उसेभी अनन्त कहते हैं, जो ज्ञान अनन्त श्रेयोंसे ज्ञात है उसेभी अनन्त कहते हैं। ऐसी अनन्त ज्ञानसे युक्त होते हुए निःश्रेयसमें बसते हैं। ज्ञानका स्वभाव जानना है। सामने वाले पदार्थको जाने यह ज्ञान का स्वभाव नहीं है या इन्द्रियके द्वारा पदार्थको जाने यह ज्ञानका स्वभाव नहीं है, या वर्तमानमें अवस्थित पदार्थोंको जाने, यह ज्ञानका स्वभाव नहीं है। किन्तु जगतमें जोभी सत् है वह सब ज्ञानमें आजाय, इस प्रकारके ज्ञानकी वृत्ति होती है। जो लोग अभिमुखताकी दृष्टि रखकर सोचते हों कि जो सामने हो वही तो ज्ञानमें आएगा सो यह सामने आएका ज्ञान करनेकी हम आपको जो विवशता बनी है वह शरीर दीवालके होने के कारण बनी है। अगर यह शरीर रूप दीवाल न हो तो खिड़कियोंसे जाननेकी फिर क्या जरुरत है? ये इन्द्रियां तो खिड़कियां हैं। जहां दीवाल नहीं है, आवरण नहीं है, शरीर नहीं है उस अमूर्त आत्माको तो चारों ओर और खुदमें भीतरमें सब कुछ सामनाही सामना है। जिसके मुख है उसका सामना मुखकी दिशासे है, और जिसके मुख नहीं है उसका सामना सर्व दिशावोंमें है। जो सामना बोलें उनके लिए कहाजा रहा है। ज्ञान है, जाननेका स्वभाव है, अपने स्वभावसे वह जानता है, और ज्ञेय है, उनका स्वभाव है प्रमेयपना सो अपने ही स्वरसतः वह प्रमेय हो जाता है। ऐसा ज्ञेय ज्ञायक सम्बंध होनेके कारण प्रभु अनन्त ज्ञानी हैं। ऐसा अनन्त ज्ञानरूप वर्तते हुए निःश्रेयसमें वे शाश्वत रहा करते हैं।

अनन्त दर्शन सम्पन्न परमात्माका निःश्रेयसमें आवास—ये सिद्ध प्रभु अनन्त दर्शनवान हैं, अनन्त दर्शनकी भूमिका अनन्त ज्ञानने बना दी अर्थात् अनन्त ज्ञानके द्वारा जो कुछ ज्ञेयहो रहा है ऐसे ज्ञेयको जाननहार आत्माका प्रतिभास होना अनन्तदर्शन है। दर्शनमें किसी पदार्थका प्रतिभास नहीं होता, क्योंकि पदार्थका प्रतिभास होनातो ज्ञान है पर पदार्थ जहां प्रतिभासित हो रहे हैं ऐसे प्रतिभास करने वाले आत्माको प्रतिभास कर लेना दर्शन है। जैसे कोई पुरुष केवल दर्पणको ही देखता है और बात सारी बता देता है कि पीछे कहां क्या हो रहा है। जैसे मानों कुछ बालक लोग उछल कूद रहे हैं तो दर्पणमें देखकर उस सबका प्रतिभास कर लेते हैं। उसने उन पदार्थोंको नहीं जाना, वहतो केवल दर्पणको ही प्रतिभास रहा, मगर उन सबका फोटो रूप परिणमे हुए दर्पणको प्रतिभासे तो उसमें सबका प्रतिभास

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आ गया, ऐसेही अनन्त ज्ञेय पदार्थोंको जानने वाले इस परमात्माको जिसने प्रतिभासा उसीकातो वह अनन्त दर्शन कहलाता है। ऐसे अनन्तदर्शनसे युक्त भगवन्त निरन्तर अब निःश्रेयसमें ही बसा करते हैं। देखिए—प्रभुमूर्तिके दर्शन करके एक बारतो चित्तमें यह आवाज उठ जाना चाहिए कि आनन्द है तो इस दशामें है इसके सिवाय अन्यत्र कहीं आनन्द नहीं है, ऐसा अगर चित्तमें आयगा तो आपको बाह्य समागमोंसे सहज विरक्ति होगी और आनन्दधाम निज सहज परमात्मतत्त्वके ध्यानकी धुन बनेगी।

अनन्तशक्ति सम्पन्न परमात्माका निःश्रेयसमें आवास—ये पवित्र आत्मा अनन्त शक्तियोंसे युक्त होते हुए निःश्रेयसमें बसते हैं, प्रभुमें अनन्त शक्ति क्या है? क्यावे इस जगतकी सृष्टि करते हैं? क्यावे जिसे चाहे उस को उठाकर फेंक दिया करते हैं? क्या अनन्त शक्ति है जिससे बताया जाता कि उनकी शक्तिका अन्तही नहीं आता? उनकी अनन्त शक्ति क्या है सो सुनो—उनका ज्ञान अनन्त ज्ञान है तो अनन्त ज्ञानको बनाए रहनेका जो सामर्थ्य है वह काम क्या छोटे मोटे सामर्थ्य द्वारा बन जाएगा? जहां अनन्त शक्ति प्रकट है वहांही तो अनन्त ज्ञानका विलास चलेगा। अनन्त गुण डटे रहें, उन गुणोंमें कमी न आए, उनमें विकार न बने, वे सही ढंगसे बने रहें सदैव, ऐसा होने के लिए अनन्त सामर्थ्य चाहिए वही अनन्त सामर्थ्य है। यद्यपि सब कुछ प्रभुमें अखण्ड रूपसे है। वहां भेद नहीं पड़े हैं, पर्याय एक है, पर उस पर्यायका भेद करें समझनेके लिएतो गुणका सहारा लेकरही किया जा सकेगा। और उस भेद दृष्टिसे यह सब ज्ञात हो रहा है। प्रभुमें अनन्त शक्ति है, भला जब यहांही शरीरके मैलको डॉटनेके लिए सामर्थ्यकी जरुरत है। तो जब एक नाक वगैरहके डाटनेके लिए शक्तिकी आवश्यकता समझी जा रही है तब फिर क्या विकासको डाटे रहने वाली शक्तिकी आवश्यकता नहीं होती? अनन्त विकास निरन्तर चल रहा है, यह सब अनन्त बलका महात्म्य है। प्रभुके अनन्त बलका यह अर्थ नहीं हैकि वह परपदार्थोंमें कुछभी फेर फार बदल परिणति जो चाहे करता रहे। प्रभु वीतराग हैं, वे किसीका न भला करने आते, न बुरा करने आते। वह शुद्ध द्रव्य अपने आपके स्वरूपमें निरन्तर शुद्धतासे परिणमते रहते हैं, तो अनन्त शक्तियोंसे युक्त आत्मा सुख पूर्वक, शान्तिपूर्वक निर्वाणमें बसे रहा करते हैं।

परमार्थ-स्वास्थ्य सम्पन्न परमात्माका निःश्रेयसमें आवास—यह आत्मा स्वास्थ्यसे युक्त है। स्वास्थ्य मायने स्वस्मिन तिष्ठति इति स्वस्थः स्वस्थस्यभावः स्वास्थ्यं। अपने आपमें ठहरनेका नाम है स्वस्थ। स्वस्थ के भावका नाम है स्वास्थ्य, अपने आपके स्वरूपमें स्थित बने रहनेको स्वास्थ्य कहते हैं। शरीर कैसाही निरोगहो, बलवानहो, उसे कोई माने कि मैं स्वस्थ हूं तो उसका बहुत बिगड़ा हुआ स्वास्थ्य है। उसमें भ्रम आया, मिथ्यात्व आया, मोह आया, कितनी गड़बड़ी आयी आत्मामें, तो इतने विकारमें लदे हुए पुरुषको स्वस्थ कहेंगे क्या? वहतो अधिक बिगड़ा है। उसके आध्यात्मिक रोग इतना बड़ा प्रबल लगा हुआ है जो शरीरको निरखकर कल्पना करता है कि मैंतो बड़ा स्वस्थ हूं। जब लोग आपसमें मिलते हैंतो एक दूसरेसे पूछते हैं कि भाई आपका स्वास्थ्य कैसा है? तो लोग तुरन्त उसका उत्तर यह देतेकि मेरा स्वास्थ्य बहुत ठीक है। पर स्वास्थ्यकाजो सही अर्थ है उस दृष्टिसे निहारें तो ये दोनों पागलोंकी जैसी बातें चल रही हैं।

रूढ़ घटनाओंका अतिपूर्व अध्यात्मवर्तन—आध्यात्मिक आनन्दकी बातोंको मोही जीवने अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शरीर पर लगाकर घोंटत कर दिया। कोई समयथा ऐसाकि लक्ष्मीका अर्थ ज्ञान रहता था, ज्ञान सिवाय और किसीका नाम लक्ष्मी होताही नहीं, क्योंकि लक्ष्य, लक्षण, लक्ष्मीये सब एकही प्रकारके शब्द हैं। तोमेरा लक्षण क्या याने मेरी लक्ष्मी क्या? यह ज्ञान, आत्माका सहज ज्ञानस्वरूप, उसकी दृष्टि और इस ज्ञान लक्षणका ही महत्त्व है यहकि आनन्ददायक है और इसीका ही प्रतिभास वैभववान कहलाता है और इसकी ही सेवामें आनन्द जगता है। इतनी बातें लोग जानते रहे पहले पर जैसे-जैसे समय गुजरा लोगोंके विचार बदले, विषय कषायकी ओर बुद्धि आने लगीतो इतना ख्यालथाकि लक्ष्मी बहुत आनन्द देने वाली होती है, मनोरथ सिद्ध करने वाली होती, है, यह बात सुनते आयेथेना। ज्ञानको लक्ष्मी जानकर इतना सुननातो रह गया और ज्ञान यह सबसे हट गया। चूँकि विषयोंमें प्रीति हैतो उसका साधन है यह बाह्य पदार्थ, धन दौलत, तो अब एक आनन्द देने वाली चीज यह धन दौलतही लक्ष्मी बन गई, ऐसा कल्पनामें आया। ऐसी कितनीही घटनाएं मानों पहले चित्रोंके रूपमें एक अध्यात्मतत्त्वको समझानेके लिए चलती थीं। उनकी दृष्टि हटी और लौकिक रूपमें लेली गई। गणेशकी मूर्ति पहले बनायी जाती थी स्याद्वाद अनेकान्तका दर्शन करनेके लिए। जिस स्याद्वादकी मूर्ति है गणेश। चूहे पर विराजे और धड़में जो हाथीका मुख फिटहो गया यहहै अभेदनयका, निश्चयनयका प्रतीक याने अभेदमें ऐसा बढ़ना चाहिए, अभेददृष्टिसे वस्तुको ऐसा परखना चाहिए कि जहां भेद कुछ न रहे, एक ही दृष्टिमें रहे, जैसेकि धड़से हाथीका मस्तक एकमेकहो गया, फिटहो गया, कहीं धार तकभी नहीं दिखती। और भेदनयसे वस्तुके गुण, पर्याय, अविभाग प्रतिच्छेद, रस इन सबका ऐसा विश्लेषण करना चाहिए, ऐसा न्यारा-न्यारा ज्ञान प्रकाशमें लाना चाहिए जैसेकि चूहेकी आदत होती हैकि कागजको या कपड़ेकोया किसी चीजको वह कुतरता हैतो ऐसा कुतरता है, इतने छोटे-छोटे टुकड़े कर देता हैकि आपको कतरनीसे कतरना कठिनहो जाए। वह चूहा व्यवहार भेदनयका प्रतीक है। भेदनयसे इस तरहसे अंश कर करके पदार्थोंको समझें। यह स्याद्वादका प्रतीक किन्ही ज्ञानियों ने बना रखा था। अब स्याद्वाद अनेकान्तये सब बातेंतो ओझलहो जाती हैं और चूँकि उस मुद्राकी महिमा चल रही थीतो आज वही बढ़-बढ़कर देवताके रूपमें महिमावान माना जाने लगा।

वीतरागताभय परमस्वास्थ्य सम्पन्न परमात्माका निःश्रेयसमें आवास—प्रकरण यह कहाजा रहाकि वह परमात्मा स्वास्थ्यसे युक्त है। स्वास्थ्यका अर्थ है ज्ञान-ज्ञानमें वर्ते। रागद्वेष जहां रंचभी न आयें, विकार न रहें उसे कहते हैं स्वास्थ्य। जैसे देहमें रोगआ जाएतो लोग कहने लगतेकि हमारा स्वास्थ्य बिगड़ गया ऐसेही आत्मामें रागद्वेषकी वेदना अगर आयीतो उससे कहोकि स्वास्थ्य बिगड़ गया। प्रभुका अनन्त स्वास्थ्य है, रागद्वेषसे बिल्कुल अतीत हैं। ऐसी वीतरागतासे युक्त होते हुए परमात्मा मोक्षमें अनन्त सुखको अनुभव रहे।

ये प्रभु आह्लादसे युक्त हैं। आह्लाद आनन्द एकही बात है। शब्दसे आह्लादका अर्थ हैकि चारों ओरसे आनन्द। आह्लाद का यह अर्थ हैकि प्रकृष्ट रूपसे पूर्ण सीमा पार करता हुआ आनन्द। अर्थात् अनन्त आनन्दसे युक्त हैं प्रभु। आनन्द कहते किसे हैं? चारों ओरसे नन्द रहना। आका अर्थ है चारों ओरसे, नन्दका अर्थ है समृद्धिशाली रहना। लोग आनन्दका अर्थ सुख करने लगे, क्योंकि जीवोंको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन्द्रिय सुखकाहीतो परिचय है पर वह आनन्द नहीं कहलाता। जहां तरंग उठें, जहां ज्ञानादिककी कमी आए, विकास रुकाहो उसे आनन्दनहीं कह सकते। नंद शब्द बना है टुनदि धातुसे। टुका लोपहो जाता है और नका आगमहो जाता बीचमें जिससे नंद शब्द बनता है, जिसका अर्थ है समृद्धिशाली होना। चारों ओरसे अनन्त समृद्धिशाली होनेको आनन्द कहते हैं। जिस आनन्दमें आह्लाद भरा है, आह्लाद भरा है पूर्ण निराकुलतामें। ऐसे अनन्त आह्लादसे युक्त प्रभु निःश्रेयसमें सुख पूर्वक रहते हैं।

समाधिमरणका माहात्म्य और आत्माके सच्चे मित्रका परीक्षण—अनन्तानन्द सम्पन्न निःश्रेयसता प्राप्त करना यह सब समाधिमरणका परिणाम है। जिसका विधिपूर्वक सम्बंध सहित मरणहो जाए उससे बढ़कर ऊंचा भवितव्य किसका कहा जाए? जीवनमें अनन्त बातें काम आती हैं, अनेक सुख मिलते हैं। बड़े वैभवका मौज लूटते हैं, लोगोंमें सम्मान प्राप्त करते हैं। अनेक प्रकारके राजा महाराजावोंका नामजो पूजा जाता है ऐसे-ऐसे बड़े-बड़े ठाठभी समाधिमरणके ठाठके आगे तुच्छ चीज हैं। जिनको अपने मित्रपर, अपने माता-पिता पर, अपने कुटुम्बीजनों पर वास्तविक प्रेम उमड़ा होतो उनको समाधि मरण का ही वातावरण बनाए रखना चाहिए। ऐसा नहीं कि मरते समय जैसे कोई क्रूर पुरुष किसी जीवका वध करे या मानो डाकुवोंने किसी पुरुषको मार डालातो वह मर गया पर यह ख्याल करकेकि कहीं इसके थोड़ी बहुत श्वास अभी चलतो नहीं रहीवे पुनः लौटकर उसे मसल-मसल कर मार डालते ऐस ही घरके लोग यदि मरने वालेके सामने रागकी, ममताकी बात करेंतो समझलोकि वे उसके लिए बहुत बुरा कर रहे। अब उसके मरते समय शायद कुटुम्बीजन ऐसा सोचतेहोंकि कहीं थोड़ी बहुत अभी श्वांसतो नहीं चल रही याने कुछ विशुद्धि तो नहीं हो रही, विशुद्धि यदि चल रहीतो मानोंवे उसे रागमोह रूपी शस्त्रसे मसल मसलकर मार रहे हैं। वहभी चैतन्य प्राणका घात होनेसे हत्या करने जैसा काम है। यद्यपि कुटुम्बीजन उसके साथ ऐसी क्रूरताका भाव करकेतो नहीं मारते मगर राग मोह भरी बातें करके कामतो कर रहे हैं विकट हत्यारे जैसाही। तो जिन्होंने निर्वाण पाया है उनका वह सब समाधिमरणका माहात्म्य है। कोई तत्काल कोई निकट भवोंमें ऐसे समाधिबलसे मुक्तिको प्राप्त करता है।

अनन्ततृप्तिसम्पन्न परमात्माका निःश्रेयसमें आवास—प्रभु तृप्तिसे युक्त हैं बताओ वह तृप्ति कहां मिलेगी? इन्द्रिय सुखमें मिलेगीया मनके सुखमें मिलेगी, यावैभवमें मिलेगी, याकुटुम्बमें मिलेगी? क्या खूब खाते-खाते तृप्ति मिल जाएगी? नहीं। खूब खाते जाइये, खानेमें काम करने का अन्त न आ पाएगा। और उसका प्रमाण हैकि अनादिकालसे अब हम खूब खाते आये पर तृप्तितो न मिल सकी। अरे वह तृप्ति बाहरमें कहीं न मिलेगी। वहतो ज्ञानसे ज्ञानमें ज्ञानहीहो, यह स्थिति बने तो तृप्ति मिलती है। अन्य स्थितिमें तृप्ति नहीं मिल सकती। कहां तृप्ति मिलेगी? विषयोंकी इच्छा दूर होगीतो तृप्ति मिलेगी, विषयोंके सेवनसे तृप्ति नहीं मिल सकती। अब कितनी उल्टी बात चल रही है। लोग इसी ख्यालमें हैंकि विषयोंके भोगनेमें तृप्ति मिलेगी, पर जैसे ईंधन मिलते रहनेसे अग्नि कभी तृप्त नहीं होती बल्कि आगकी तृष्णाा बढ़ती जाती है, अग्निकी वृद्धि होतीही रहती है, ऐसेही ईंधनके समान हैंये सब विषय साधन। इन विषय साधनोंके संयोगमें और इनमें अपने दिलको बहलानेमें यह मोही तृप्तिके

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्वप्न देख रहा है। उससे तृप्ति न होगी किन्तु तृष्णा ही बढ़ेगी और उन विषयोंकी वाञ्छा दूर करदी जायतो तृप्तिहो जाएगी। ऐसी तृप्तिसे युक्त प्रभु मोक्षमें बड़े आरामपूर्वक रहते हैं।

सर्वशुद्धि सम्पन्न परमात्माका निःश्रेयसमें आवास—व्रतोंका निर्दोष पालन करके अन्त समयमें समताभाव पूर्वक आयुक्षय करने वाला पुरुष उसी भवमें अथवा कुछ एक भव बाद मनुष्यभव पाकर मोक्ष जाता है इसही विधिसे मोक्ष जाने वाले। आत्मा सिद्ध अवस्थामें किस प्रकार रहता है उसका वर्णन चल रहा है, वह परमात्मा द्रव्यकर्मसे रहित है। भावकर्मसे रहिततो पहलेही हो गया था अरहंत अवस्थामें, अब द्रव्यकर्म और नो कर्म इनसेभी रहितहो गए, केवल आत्मा रहा अमूर्त आकाशवत् निर्लेप निरञ्जन केवल ज्ञाताद्रष्टा ऐसे शुद्ध एकत्वकी स्थितिमेंवे सिद्ध भगवान अनन्त काल तक इसही स्थितिमें रहेंगे, और इस स्थितिमें रहकर आगे कभीभी रंचमात्र विकारको प्राप्त नहीं होते। विकारजो पहलेहो रहा था संसार दशामें वह उपाधिका निमित्त पाकरहो रहा था। जब निरुपाधिहो गए तब धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्यकी भांति पूर्ण शुद्ध परिणमन करने वाले हुएतो ऐसी शुद्धिको प्राप्त हैं। ऐसे प्रभु गुणस्मरण करने वाले पुरुष शीघ्रही सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूपका अनुभव कर पाते हैं, जिस अनुभवके आधारसे विकास होता रहता है। आज हम आप अशुद्ध दशामें हैं औरजो शुद्ध दशामें है ऐसे प्रभु हमारा कुछ करते नहीं है। हमको तारदें प्रभु, हमको कर्मसे रहित कर दें ऐसा प्रभु नहीं करते। वेतो समस्त पदार्थोंके जाननहार रहते हुए अनन्त आनन्दमें तृप्त रहते हैं। शुद्ध जीवद्रव्यकी यही विशेषता है। तोअब हम इस आधारसे अपना उत्थान कर सकते हैं, जोशुद्ध हैं, परमात्मा हैंवेतो अपने आनन्दमें मग्न हैं, वे मेरा परिणमन नहीं करते हैं, फिर हमारा शुद्ध परिणमन बने कैसे ?तो उसका उपाय यहही हैकि हम अपने आत्माके अन्तः प्रकाशमान सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूपका आश्रयलें और इसका आश्रय करनेके लिए सिद्ध भगवन्तके स्वरूपका हम स्मरण करेंगे, उनकी पर्याय आत्म स्वभावके साथ एकमेक हुई है, जो सहज स्वभाव है वैसाही वहां विकास है। तो प्रभुके विकासको निरखकर हम आसानीसे स्वभावकी दृष्टिमेंआ सकते हैं और इसीलिए भगवन्तके गुणस्मरण पूजाका कर्त्तव्य बताया है। तोवे प्रभु उतना शुद्ध हैं जैसाकि सहज स्वभाव है उसहीके अनुरूप उनका विकास है। ऐसी आत्यंतिक शुद्धि सहित प्रभु मोक्षमें अनन्त आनन्द सहित विराजते हैं।

निःश्रेयसको प्राप्त भगवंतोंकी निरतिशयता व निरुपाधिता—ये सिद्ध प्रभु निरतिशय हैं, निरतिशयके दो अर्थ हैं, निर्‌का अर्थ है निःशेष यांने समस्त जगतमें जितना अतिशय हो सकता है उन सब अतिशयोंके ऊपर परिपूर्ण अलौकिक अतिशयसे युक्त है दूसरा अर्थ यह है कि सिद्ध भगवानमें परस्पर कोई किसीका विशेष अतिशय नहीं है। अर्थात् एक सिद्धकी अपेक्षा दूसरेमें कोई महिमा बढ़ीहो, अतिशय बढ़ाहोसो बात नहीं है। तो ऐसे निरतिशय सिद्ध भगवन्त मोक्षमें आनन्दपूर्वक परिणमन कर रहे हैं। ये प्रभु निरुपाधि हैं। सिद्ध हुएतो अब इनका कभी अन्त नहीं आता है अनन्त काल तक सिद्ध दशाही रहती है। जीव एकबार शुद्ध होने पर फिर कभी अशुद्ध नहीं होता, उसका कारण यह हैकि जब जीव शुद्ध हुआ है तब यह अकेलाहीतो रहा। अब इसके साथ द्रव्यकर्म नहीं, भावकर्म नहीं, शरीरभी नहीं है, केवल एक विशुद्ध आत्मा मात्र है। सो आत्मामें कोई गुण ऐसा नहीं हैजो हमारे बंधका कारणहो,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विकारका कारणहो जिससेकि यह फिरसे रागीद्वेषी बने। यद्यपि जीवमें योग्यता है ऐसीकि कर्मके उदयका निमित्त पाकर यह रागीद्वेषी बन जाता है, मगर अशुद्ध पर्यायमें ही ऐसी योग्यता है। जीवद्रव्यके द्रव्यमें योग्यता नहीं है। यदि अशुद्धपर्याय जीव हैतो द्रव्य कर्मका निमित्त पाकर वैभाविकी शक्ति रागी द्वेषी बनती है। जैसे एक परमाणुमें जल भरनेकी शक्ति नहीं है, पर अनेक परमाणु लेकर मिट्टी बनाकर घड़ा बन जाएतो उस घड़ेमें पानी भरनेकी योग्यताआ जाती है, यह है पर्याय-योग्यता। सो जीवमें पर्याय योग्यता है ऐसीकि द्रव्यकर्मका सन्निधान पाकर रागीद्वेषी बने, पर वह अशुद्ध पर्याय-योग्यता सिद्ध प्रभुमें अब है नहीं इस कारण विकार आनेका अब कोई प्रसंग नहीं रहा। अबवे सदा काल निर्विकारही रहेंगे। इस प्रकार व्रती पुरुष निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर निर्दोष साधना करके, निर्विकल्प समाधिके बलसे मोक्षको प्राप्त होता है। उस मोक्षमें किस प्रकार सुख अनुभवते हैं उसका वर्णन इस छंदमें किया गया है।

काले कल्पशतेऽपि च गते शिवानां न विक्रिया लक्ष्या।
उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसंभ्रान्तिकरणपटुः॥ १३३॥

सिद्ध भगवंत्तोमें सदाके लिए विकारकी असंभवता—अनन्त कल्पकालभी व्यतीतहो जाएंतो भी मुक्त आत्मावोंके कभीभी विक्रिया नहींआ सकती। चाहे ऐसाभी उपद्रव सामने आएकि जो उपद्रव तीन लोकको भी विचलित करनेमें समर्थहो, ऐसा उत्पातभी हो तबभी मुक्त आत्मावोंमें कभी विकार सम्भव नहीं है। कल्पकाल किसे कहते हैं? उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी दोनोंका जितना समय है उसे कल्पकाल कहा जाता है। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीमें कितना समय है, सोयह छह तरहके कालोंसे विदित होता है। पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवां, छठा काल इस क्रमसे चलेतो उसे बोलते हैं अवसर्पिणी काल और छठा, ५वां, चौथा, तीसरा, दूसरा, और पहला इस प्रकारसे काल चलेतो उसे कहते हैं उत्सर्पिणी काल। इन दोनों उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालके समयको कल्पकाल कहते हैं।

सुषमासुषमा नामक प्रथमकालकी परिस्थियोंका दिग्दर्शन—पहले कालमें भोगभूमिया जीव होते हैं, जिनकी तीन पल्यकी आयु होती है, जिसमें असंख्याते वर्षआ जाते हैं। तीन दिनमें बहुतही थोड़ीसी क्षुधा होती हैसो छोटे बेर प्रमाण कल्पवृक्षसे उनका आहार प्राप्त होता है और इतनेसेही ये तुष्टहो जाते हैं। ये जुगलीयां उत्पन्न होते हैं बालक बालिका औरयेही परस्पर सुख पूर्वक रहते हैं, वहां व्रतकी प्रक्रिया नहीं होती है। अव्रतीही रहते हैं सब, जिन्दगीभर सुख आरामसे रहते हैं। इस प्रथम कालकी स्थिति है चार कोड़ाकोड़ी सागर। एक करोड़ सागरमें एक करोड़ सागरका गुणा किया जाए, जितना काल लब्धहो उसे कहते हैं कोड़ाकोड़ी सागर। ऐसे चार कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण प्रथम काल है। एक कोड़ाकोड़ी सागरमें अनगिनते वर्ष होते हैं, जिन्हें उपमा द्वारा बताया गया है। इतने लम्बे कालको उपमा द्वाराही बतायाजा सकता है। और कोई उपाय नहीं हैकि जिससे उस कालकी परखकी जा सके। उपमा इस प्रकारदी गई हैकि मानोंदो हजार कोशका लम्बा चौड़ा गहरा गड्ढाहो और उसमें बहुत कोमल बालके टुकड़े जिनकाकि कतरनीसे दूसरा टुकड़ा न बन सके, उन छोटे-छोटे टुकड़ोंको बड़े विशाल गड्ढेमें ठसाठस भरा जाए, मानो उस पर हाथी फिरा दिया जाए, खूब ठूँसकर भर जाए, अब

Report any errors at vikasnd@gmail.com

उनमेंसे प्रत्येक १०० वर्षमें एक-एक बालका टुकड़ा निकाला जाएतो इस तरहसे जितने कालमें निकलें वह है व्यवहार पल्य। उससे असंख्यात गुना होता है उद्धारपल्य। और उससेभी असंख्यातगुना समय होता है अद्धापल्य। ऐसे १० कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यका एक सागर होता है। ऐसे ४ कोड़ाकोड़ी सागर तक उत्तम भोगभूमि रहती है इस भरत क्षेत्रमें। ढाईद्वीपके अन्दर ५ भरत और ५ ऐरावत क्षेत्र हैं उनमें इसी तरहसे क्रम चलता है।

दूसरे और तीसरेकालकी परिस्थितियां—सुषमा सुषमाकालके बाद दूसरा काल आता जिसमें मध्यम भोगभूमि रहती। मनुष्योंकी दो पल्यकी आयु रहती। तीसरे कालमें जघन्य भोगभूमि होती। वहां एक पल्यकी स्थिति रहती जब तीसरे कालका अन्त होता है और कल्पवृक्ष मंदहो जाते हैं, लोगोंको तकलीफ होने लगती है, भोग भूमिके समयमें सिंह हाथी वगैरहभी थे मगर वेभी निकट रहते थे। क्रोध करना, मारना, ये कुछ न चलते थे फिरये जानबूझकर क्रूर होने लगे। चन्द्र सूर्यके दर्शन न होते थे भोगभूमिके समयमें कल्पवृक्षकी ज्योतिके आगे। अब कल्प वृक्षोंकी ज्योति मन्द होनेसे चन्द्र सूर्य दिखने लगे। कल्पवृक्ष भोजन आहार कम देने लगे, यहां लोगोंके भूख बढ़ने लगी तो कल्पवृक्षका बंटवारा चला। इतने लोगोंके लिए इतने क्षेत्रमें कल्पवृक्षोंसे काम करें। चन्द्र सूर्य और सिंहादिकसेजो भय होने लगेतो कुलकरोंने वह भय टालनेका उपदेश दिया, प्रयत्न बताया। धीरे-धीरे कर्मभूमि आने लगीतोवे सब सुख सुविधाएँ विघटने लगीं।

चौथे, पांचवे व छठे कालकी परिस्थितयां व कल्पकालका परिमाण—तीसरी भोगभूमि याने जघन्य भोगभूमिके अन्त में अब लगता चौथा कालतो उसके प्रारम्भमें तीर्थकरोंकी उत्पत्तिहोती। अब वहांसे कर्मभूमि लगी। कुलकरोंने लोगोंको जिन्दा रहनेके उपाय बताये और खासकर इस भरत क्षेत्रमेंतो ऋषभदेव भगवान हुए। असि मसि कृषि वाणिज्य शिल्प सेवाके षट् कर्मका उपदेश देकर लोगोंको अभय किया। यह सब बतायाथा ऋषभ देवने गृह अवस्थामें। चौथे कालमें निर्ग्रन्थ दिगम्बर होकर मोक्ष जानेका उपदेश चल उठता। चौथे कालमें उत्पन्न हुआ जीव पंचम कालमें भी मोक्ष जाता है, पर पंचमकालमें उत्पन्न हुआ जीव मोक्ष नहीं जाता। आज यह पंचमकाल है, इसके बाद छठा काल आएगा जहां अग्नि, धर्म, ये कुछ न रहेंगे, भोजन रसोई कुछ न रहेगा। मनुष्य होंया पशुहों सब मांस परही जीवित रहेंगे। इतना निकृष्ट काल है। जहां आयु २० वर्षकी रहेगी। एक हाथ प्रमाणके मनुष्य होंगे। जब यह छठा काल पूर्ण होगातो अन्तमें प्रलय होगी भरत क्षेत्रके आर्यखण्डमें। इस प्रलयमें ४९ दिन तक अग्नि वर्षा आदि द्वारा प्रलय होती है, सबका विध्वंस होता। पर कुछ जीव बच जाते जिन्हें देवोंने गुफावोंमें रख कर बचाया। कोई विचारे खुद गुफादिक सुरक्षित स्थानमें पहुंच कर बच जाते। प्रलयके बाद फिर ४९ दिन अच्छी वर्षा होती है। वे बचे हुए जीव निकलने लगते हैं और फिर उनसे आगे संतान होती, संख्या बढ़ने लगती है। अब वह छठा कालहो गया उत्सर्पिणीकालका। इस छठेके बाद पंचम काल आएगा। पंचम कालके बाद चौथा काल आएगा जिससे फिर निर्वाण होना शुरु होगा। उसके बाद तीसरा दूसरा और पहला इस प्रकार उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालका जितना समय है वह एक कल्पकाल कहलाता है। कितने हुएये सब? २० कोड़ाकोड़ी सागर। पहलेका चार कोड़ा कोड़ी

http://sahjanandvarnishastra.org/

सागर, दूसरेका ३ कोड़ाकोड़ी सागर, तीसरेका दो कोड़ा कोड़ी सागर, चौथे, ५वें, छठवेंका एक कोड़ा कोड़ी सागर, जिसमें पंचम काल २१ हजार वर्षका है, छठाभी २१ हजार वर्षका है। यों ४२ हजार वर्ष कम करके बाकी सारा एक कोड़ा कोड़ी सागर चौथे कालका होता है। ऐसे २० कोड़ा कोड़ी सागरका एक कल्पकाल और ऐसे अनन्त कल्पकालभी गुजर जाएं और तीन लोकको विचलित कर सकने वाला उपद्रवभी खड़ाहोतोभी मुक्त आत्मावोंमें कभीभी विक्रिया सम्भव नहीं है।

श्री ऋषभदेवसे पहिले अठारह कोड़ाकोड़ी सागर काल तक धर्मतीर्थकी अप्रवृत्ति—एक भजन बोला जाता हैकि १८ कोड़ा कोड़ी सागर व्यतीत हुए बाद धर्म तीर्थकी प्रवृत्ति हुई। भजनकी टेक है—अठदश कोड़ाकोड़ी सागर सुस्थ काल जब बीत गए। प्रथम तीर्थंकर आदि जिनेश्वर अवतरहि धर्म कृतार्थ भए। जिसका अर्थ हैकि १८ कोड़ा कोड़ी सागर तक धर्मकी प्रवृत्ति यहां नहीं रही, उसके बाद ऋषभदेव भगवानका अवतार हुआ और वहाँ पुनः तीर्थ प्रवृत्ति चलीतो आप उसकी गणना लगाएँकि ऋषभ देव जब उत्पन्न हुए उससे पहले १८ कोड़ा कोड़ी सागर तक धर्म न रहा। वह किस तरह? तो ऋषभ् देव भगवान अवसर्पिणी कालके तीसरे कालके अन्तमें चौथे कालसे कुछ पहले हुएतो उनको पहले कितना समय और गुजरा? तो ऋषभदेवके जन्मके समयसे पहलेदो कोड़ाकोड़ी सागरका तीसरा कालथा। उससे पहले तीन कोड़ाकोड़ी सागरका दूसरा काल था, उससे पहले ४ कोड़ा कोड़ी सागरका पहला काल था, फिर उसके पहले चार कोड़ा कोड़ी सागरका पहला काल था और उससे पहले तीन कोड़ा कोड़ी सागरको दूसरा काल था। उससे पहलेदो कोड़ा कोड़ी सागरका तीसरा काल था। उससे पहले तीर्थंकर हुए थे। इस तरह ९ कोड़ा कोड़ी सागर उत्सर्पिणीके और ९ कोड़ा कोड़ी सागर अवसर्पिणीके ऐसे १८ कोड़ा कोड़ी सागरके कालमें धर्मतीर्थ न था, फिर ऋषभदेवके समय धर्मकी प्रवृत्ति हुई।

ऋषभदेव भगवानकी लोकपूज्यता—आजभी ऋषभदेवको लोग अनेक रूपमें मानते हैं। कोई ब्रह्माके रूपमें, कोई शंकरके रूप में, कोई आदम बाबाके रूपमें और कोई ऋषभदेवके रूपमें मानते हैं। ब्रह्माके रूपमेंतो लोगयों कहने लगेकि भोगभूमियोंके व्यतीत होनेके बाद विकट समस्याका कालआ गया। लोग कैसे खाएँ पियें, जिन्दा रहें, यह एक विकट समस्याआ गयी थी। इस समयजो प्रभुने व्यवस्था बतायीतो वह मानो एक नए जन्मकी तरह, नई सृष्टिकी तरह थीसो उन्हें एक सृष्टिकर्ताके रूपमें माना जाने लगा। धर्मतीर्थकी रचनाभी चलीसोभी स्रष्टा कहलाने लगे। लोग ब्रह्माको चार मुख वाला बताते हैंतो बात यह हैकिवे ऋषभदेव जब समवशरणमें बिराजे थेतो वे चतुर्मुख थे। इन्हीं प्रभुको लोग शंकर या कैलाशपतिके रूपमें मानते हैं। चूँकि कैलाश पर्वतपर उनका बहुत अधिक समय व्यतीत हुआ था और ऋषभदेव कैलाश पर्वतसे मुक्तभी हुए। और सुख देने वाले होनेसे शंकर कहलाए, शं सुखं करोति इति शंकरः। उन्हें कोई आदिम बाबाभी कहते हैं, औरभी एक बात देखनेको मिलतीकि यदि कोई कैलाश पर्वतके निकट पहुंचे और वहांके लोगोंसे पूछेकि किधर है कैलाश पर्वतका रास्ता, बतादो, हम कैलाश पर्वत जाऐंगे? तो वहां लोग आश्चर्यसे आकर कहेंगे क्या आदम (आदिम) बाबाके स्थान पर जायेंगे? आदिम कहते हैं उसेजो आदिमें हो। जैसेजो अन्तमेंहोसो अन्तिम ऐसेही जो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

आदिमेंहोसों आदिम। तो इतनी प्रसिद्धि क्यों हुईकि वह ऐसी विकट समस्याका समय थाकि लोगोंको कोई मार्गका बोध न थाकि अब हम कैसे जिन्दा रह सकते। तो उस समयकी व्यवस्था ऋषभदेवने गृहावस्थामें बतायी। यद्यपि ऋषभदेव कुलकर न थे। कुलकरतो उनके पिता नाभिराज थे। वे १४वें कुलकर हुए। उससे पहले १३ कुलकर और हुए। उन कुलकरोंका काम थाकि ऐसी विकट समस्या जब आती थी कि किसी समय सूर्य चन्द्र दिखने लगे, किसीके सामने सिंह गुजरने लगे, ऐसी विविध घटनाएँ आयीं, उस समय इन कुलकरोंने इन समस्याओंका समाधान किया।

परमात्मामें विकारकी अत्यन्त असंभवता—यहां बतला यह रहे हैंकि ऐसे कल्पकाल सैकड़ों गुजर जाएँ और बड़े-बड़े उत्पातभी हो जाएँतोभी सिद्ध प्रभुके कभी विकार सम्भव नहीं है। अबतो उनकी स्थिति धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य, काल द्रव्यकी तरह विशुद्ध स्थिति है। यद्यपि परिणमन बंद नहीं हुआ है। परिणमन करनातो वस्तुका स्वभाव है, प्रत्येक पदार्थ निरन्तर परिणमता रहता है, और इस तरह धर्मादिक द्रव्यभी निरन्तर परिणमते रहते हैं। तो वह सब परिणमन स्वाभाविक शुद्ध परिणमन होता है। यों कह लीजिएकि 'सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि निजानन्दरस लीन।' वे तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंके जाननहार हैं किन्तु अपने अनन्त आनन्दरसमें लीन रहते हैं। प्रभुका परिणमन जिस भव्य आत्माकी समझमें आ जाए वह स्वभावका अनुभव कर लेता है, अलौकिक आनन्दका अनुभव कर लेता है और उसका यह निर्णय बन जाता हैकि कामतो एक यही सारभूत है। बाकी सब असार काम है। प्रभुका परिणमन केवल ज्ञाता द्रष्टा रहना है, प्रतिभासहो रहा है, समस्तका प्रतिभास कर रहे। यहां कोई ख्याल कर सकताकि जैसा प्रभु जान रहे वैसा अगर हम जानते तबतो फिर बड़ाही अच्छा होता। सारी चीजोंके भाव हमारे ज्ञानमें पहलेसेही आ जाते, फिरतो हम मालोमाल बन जाते। प्रभुको उस ज्ञानके पानेसे क्या फायदा (हंसी) ऐसा कुछ लोग सोच सकते, मगर यह जानेकि जिसके ऐसी भावनाहोकि ज्ञान होतातो मैं कुछसे कुछ बन जाता, तोऐसा जीव कभी केवल-ज्ञानही नहीं कर सकता। सबको जानने वालेवे प्रभु सर्वज्ञ तबही हैं जबकि उनके चित्तमें रंचभी विकार नहीं है। ऐसे ये प्रभु सदैवके लिए मेरे नमस्कार किए जाने योग्य और अनन्त आनन्दको भोगने वाले होते हैं।

निःश्रेयसमधिपन्नास्त्रैलोक्यशिखामणिश्रियं दधते।
निःष्किट्टिकालिकाच्छविचामीकरभासुरात्मानः॥ १३४॥

निःश्रेयसको प्राप्त भगवंतोंकी त्रिलोकोत्कृष्ट शोभा—व्रत पालन और समाधिमरणके प्रतापसे मनुष्यभवमें निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि होकर धर्मसाधना करके निर्विकल्प समाधिके बलसे जो मोक्षको प्राप्त हुए हैंवे आत्मा कैसे शोभायमान हैं, विराजमान हैं? विकासयुक्त हैं, इसका वर्णन इस छंदमें किया गया है। ये सिद्ध प्रभु तीन लोकके शिखामणिकी शोभाको धारण करते हैं, वे तीन लोकके अन्तमें विराजमान हैं, जिसके बाद फिर लोक नहीं है, मात्र आकाशही आकाश है, यह तीन लोककी शिखाकी मणि कहलायी। दूसरी यह बात हैकि तीन लोक के इन्द्र उनकी महिमा गाते हैंतो इसके मायने यह हुआकि सब जीवोंने महिमा गायी। ऊर्द्ध लोकके इन्द्र हैं स्वर्गोंके इन्द्र, मध्य लोकके इन्द्र हैं चक्रवर्ती और सिंह।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मनुष्योंका इन्द्र है चक्रवर्ती और तिर्यञ्चोंका इन्द्र है सिंह। और अधोलोकके इन्द्र भवनवासी और व्यन्तर देवोंकेजो प्रकार हैं उनके इन्द्र हैं, ऐसे तीन लोकके इन्द्रोंने जहां प्रभुको नमस्कार किया, आदर किया, भक्तिकी, वंदनाकीतो वहां समझिएकि तीनों लोकके द्वारा पूज्य कहलाए। मेरु पर्वतकी जड़ जहां समाप्त होती है वहां तकतो है मध्यलोक अर्थात् नीचेमें इस पृथ्वीके ऊपरी तलसे एक हजार योजन नीचे तक मध्य लोक है, उसके नीचे अधोलोक प्रारम्भ होता है। सो अधोलोकमें पहलेकेजो २ खण्ड हैं इस पृथ्वीके उनमें भवनवासी और व्यन्तर देवोंके भवन हैं। वहां तक व्यन्तर रहते हैं, व्यन्तर फिर यहांभी मध्य लोकमें रहने लगते। जैसे टूटे-फूटे मकान, पीपल आदिक पेड़ अथवा कोई निर्जन जंगल, यहां परभी निवास करने लगते हैं। तोये भवनवासी और व्यन्तर इनके इन्द्र अधोलोकके इन्द्र कहलाते हैं, इन सब इन्द्रोंके द्वारा जिसके गुण बंदनीय हुए वे सिद्ध प्रभु तीन लोकके शिखामणिकी शोभाको प्राप्त हुए हैं, जैसेकि ऐसे स्वर्णके आभूषणोंमें, जिनमें कीट नहीं, कालिमा नहीं, उत्कृष्ट छवि है इस प्रकारसे जिसके द्रव्यकर्म नहीं, भावकर्म नहीं, नो कर्म नहीं, ऐसे उत्कृष्ट चैतन्य चमत्कार रूप हैं। द्रव्यकर्म और नो कर्मतो बाह्य मल हैं, और भावकर्म जीवका आन्तरिक मल है। जैसे खोटे सोनेमें बाह्यमल और आन्तरिक मल होता है, सो तपा देने पर दोनोंही मल दूर हो जाते हैं, ऐसेही आत्मामें कर्म और नोकर्मतो द्रव्यमल हैं, बाह्य मल है और भावकर्म रागद्वेषादिक विकार ये आन्तरिक मल हैं। सो चैतन्य स्वभावमें उपयोगको लगानेरूप तपश्चरणसे तपा देने पर ये दोनोंही प्रकारके मल दूरहो जाते हैं। तब ये अत्यन्त शुद्ध सदाके लिए शुद्ध सिद्ध प्रभु तीन लोकके शिखामणिकी शोभाको प्राप्त होते हैं।

मोक्षधामकी मंगलरूपता—इस जीवके अनादिसेतो निगोद निवास कुटी बनी थी। सिद्ध होने पर अनन्त कालके लिए मोक्ष निवासधाम बनता है। यह जीव अनन्त काल व्यतीत करते हैंतो दो जगह व्यतीत करते हैं—निगोदमें या मोक्षमें। बीचकी जितनी अवस्थाएँ होती हैं इनमें अनन्त काल कभी नहीं गुजरता, उनकी अवस्थाएँ होती हैं कुछ सागरोंकी और वह समय पूरा होने पर फिर वह अगर मोक्ष गयातो गया, नहींतो निगोद जाना पड़ता है। सो निगोद अवस्थामेंभी रहने वाले जीवोंका, निगोदका अन्तहोजाता है। निगोदतो अनादि है और मोक्ष अनन्त है। तो हम आपको सदा कहां रहना पड़ता है, यहभीतो ध्यानदो, यातो चिरकाल निगोद रहना पड़ता या फ़िर अनन्तकाल मोक्ष में रहेंगे। अब यह अपनी पंसद करलोकि निगोदही प्रिय हैया मोक्ष धाम प्रिय है? बीचकी चीजें टिकेंगी नहीं, त्रस पर्याय पानेका काल कुछ अधिकदो हजार सागर है। इससे अधिक त्रस पर्यायमें नहीं रह सकता। निगोदको छोड़कर शेष स्थानपर भी रहनेका काल त्रस कालसेतो कई गुणा है। मगर वहांभी अपना काल गुजर जानेपर निगोदमें आना पड़ता है। तो निगोदवासतो प्रिय न होना चाहिए। रही यह बीचकी हालत, तो इस हालतमें यदि कोई चेत गया, सम्यक्त्वका लाभपा लियातो वह पुरुष कल्याण करेगा, मोक्ष जाएगा।

जीवनको निर्दोष आचरणमें बितानेका अनुरोध—भैया, अपने जीवनमें आग्रह बनाइए सम्यक्त्व बनाए रहनेका, बाह्य परिणतियोंके बारेमें आग्रह न रखिए। कोई कैसा परिणमता है, कैसाही चलता है, उसका हर्ष विषाद न करना, अपने परिणामोंको निर्मल और न्याययुक्त बनाना, दूसरे लोग कैसाही परिणमेंवे मेरे कुछ नहीं लगते, न वे मेरे मित्र हैं न शत्रु हैं, न वे वास्तविक बन्धु हैं। मुझ आत्मासे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अत्यन्त भिन्न सत्ता वाले हैं। तोउनके किसीभी प्रकारके परिणमनसे मेरे आत्मामें कुछ खोट नहीं आती। मैंही उनका आश्रय करके उनको कल्पनामें लेकर शुभ अशुभ विकल्प करूंतो उससे मेरेको नुकसान पड़ता है। शुभ विकल्पोंमें कम नुकसान है, पर धर्मका मार्ग मिलनेका अवसर है। अशुभ विकल्पोंमें सारा नुकसानही नुकसान है। तो अपने आपपर करुणा करें, अपनेको निरखें एक चैतन्य स्वभावमात्र। इस चैतन्यस्वभावमात्र मुझ आत्माका दुनियामें कोई क्या लगता है? धर्मात्माजनोंसेतोयों प्रेम करना बतायाकि वे परस्पर एक दूसरेके धर्मविकासमें सत्संगमात्रसे सहयोगी हैं। वेभी हमारे विकासमें सहयोग नहींदे सकते, पर जब हम उनको धर्मधारण किया हुआ निरखते हैं, रागद्वेष दूर कर समता भावमें पाते हैंतो दर्शन करके खुदके धर्ममें भी प्रेरणा मिलती है। इस कारण धार्मिक भावोंमें वात्सल्य करनातो किसी अपेक्षासे लाभदायक है मगरजो रत्नत्रयधारी नहीं है, सम्यक्त्वका जिनको अनुराग नहीं है ऐसे अज्ञानीजन चाहेवे कुटुम्बमेंहो, चाहेवे बाह्य जगह हों, उनका अनुराग कल्याणके लिए नहीं होता। हां परिस्थिति कोई होती है, घरमें रहना पड़ रहा है, तो उनसे रागव्यवहार किए बिना गुजारा नहीं है, पर भीतरमें राग नहीं रहता।

विरक्ति का माहात्म्य—ज्ञानी जीव घरमें इस प्रकार रहता है जैसे जलमें कमल रहता है। कमल जलसे हीतो पैदा होता और फिरभी जलसे दूर रहता है, ऐसेही यह गृहस्थ इस घरमेंहीतो पैदा हुआ फिरभी ज्ञानी गृहस्थ घरसे दूर रहता है। जैसे जलसे पैदा हुआ कमल इस प्यारसे मानोंकि उस जलसेहीतो पैदा हुआ हूंसो जलमेंही भिड़ जाए, जलमेंही बसने लग जाएतो वह कमल सड़ जाता है, उसकी फिर शोभा नहीं रहती है, ऐसेही यह गृहस्थ यह सोचकरकि मैं इस परिवारसेहीतो पैदा हुआ हूंसो वह परिजनमें बस जाए, मिल जाए, आसक्त हो जाएतो वह गृहस्थभी सड़ जाता मायने बरबादहो जाता। ज्ञानी गृहस्थतो परम्परया निर्वाण पाते हैं औरजो मुनिजन बज्रवृषभ नाराच संहननके धारी हैंवे विरक्त रहकर आत्मधर्मकी साधना करते हैं और उसी भवसे मोक्ष जा सकते हैं। आज पंचम कालमें हीन संहनन है, छठा संहनन है और छठा संहनन होनेके कारण वह ध्यान नहीं बनता जिस ध्यानसे निर्वाण होता है फिरभी अपनी शक्ति अनुसार आत्मधर्मकी साधना मुनिजन किया करते हैं। उसका फल आगे प्राप्त होगा। तत्कालतो पापसे बचनाहो रहा है और मरण करके कोई सद्‌गति मिलेगी, यहभी भला है। तो कल्याण चाहने वाले जीवोंको सही विवेक रखना चाहिए। यह मैं आत्मा कुटुम्ब आदिकसेतो भिन्न हूं ही, शरीरसेभी निराला हूं। देहादिसे अत्यन्त भिन्न स्वरूप है जीवका। जीव है चैतन्यस्वरूप, शरीर है पौद्‌गलिक, भलेही निमित्त नैमित्तिक बन्धन है और उस बन्धनके प्रभावमें आता है, लेकिन लक्षण दोनोंका अत्यन्त निराला है,सो अपना लक्षण जानकर केवल ज्ञानमात्र आत्मामेंही आत्मत्व बुद्धि करना चाहिए। यही एक मौलिक साधना है, जिसके बलसे यह जीव निर्वाणको प्राप्त होगा।

पूजार्थाज्ञैश्वर्यैर्बल परिजनकामभोगभूयिष्ठैः।
अतिशयितभवनमद्‌भुतमभ्युदयं फलति सद्धर्मः॥ १३५॥

सद्धर्मका अद्‌भुत अतिशयित फल—सद्धर्म महान् अभ्युदयका फल देता है। ये अभ्युदय

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लौकिक और अलौकिकदो प्रकारके हैं। अलौकिक अभ्युदयतो है मोक्ष, जिससे बढ़कर अन्य कोई पद नहीं है और लौकिक अभ्युदय है इन्द्रहो जाना, चक्रीहो जाना आदि। ऐसे अभ्युदयके सम्बन्धमें यहां यह कहाजा रहा हैकि सद्धर्म अतिशयित अभ्युदयका फल देता है। सोधर्मतो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय है। रत्नत्रयसे निर्वाणलाभ हैं। आत्मस्वभावविकास रूपके रत्नत्रयके भावोंसेतो इन्द्रादिककी पदवी नहीं मिलती। इन भावोंसेतो मोक्ष मिलता है। रत्नत्रय भावोंके होते सन्तेजो शुभ राग शेष रहता है उस शुभ रागका फल हैकि इन्द्र चक्री आदिक पद प्राप्त होना। तो इसमें तो रत्नत्रय धर्मकी और बड़ी महिमा ज्ञात होती हैकि जिस रत्नत्रयका संग पाकर रागभी इतने ऊंचे पदको दिला देता है। तब फिर रत्नत्रयकी महिमातो कहहीकौन सकता है? रत्नत्रय है आत्माका विकास और शुभ राग है आत्माका विकार। मगररहै वह शुभ। तो धर्मका सम्बंध पाकरजो रागद्वेष होता है वहभी धर्मकहलाने लगता है। जैसे श्रावकजन पूजन आदिक करते हैंतो श्रावकोंको आत्माके स्वरूपका अनुभव होता है और आत्माके सत्यस्वरूपको दृष्टिमें रखते हैं और जानते हैंकि यह स्वभाव जहां प्रकटहो गया वही है प्रभु। ऐसा परिचय रखने वाला श्रावक पूजा करके भी यथोचित धर्मका लाभले लेता है, किन्तु जिनको आत्माके स्वरूपका परिचय नहीं है, अनुभव नहीं है, वे पूजा करके भी धर्मलाभ नहींले पाते। किन्तु जितना मंद कषायहो उसके अनुसार पुण्य लाभ पाते हैं।

पाप, पुण्य व धर्मके फलोंका संकेत—भाव तीन प्रकारके हैं—पाप, पुण्य और धर्म। पाप भाव तो अत्यन्त खोटा है, उसके फलमेंतो जीव नाना दुर्गतियोंमें जन्म लेता है, मरता है, खोटी गतियों को ही पाता है। और पुण्यके प्रभावसे सद्गतिमें जन्म होता है। अब वहांभी यदि व्यवहार धर्म सहित पुण्य लाभकियातो वह अच्छी समृद्धियां पाता है और व्यवहार धर्मभी नहीं है, पर हां कुछ दयाभाव होनेसे पुण्य बंध रहा है, जैसे प्राणियोंको भोजन आदिक देना, उनकी क्षुधा आदिक मेटना, ठंडमें रहने वालोंको कपड़ा देना, लौकिक दुःख मिटा देना इस प्रकारकीजो दयारूप प्रवृत्ति करके पुण्य लाभ पाते हैं उस पुण्यसे भी गति कुछ अच्छीतो होती है मगर ऊंचे स्वर्गया नवग्रैवयक आदिकके पद नहीं प्राप्त कर सकते। जिस आत्मामें रत्नत्रय धर्मका सम्बंधहो व कुछ आत्मामें रागभीहोतो वह रागभी ऊंचे अभ्युदयको प्रदान करता है। धर्मका फलतो मोक्ष धामका लाभ है। इन तीनों भावोंमें उत्कृष्ट भाव धर्म परिणाम है।

सद्धर्मके फलमें पूजा और अर्थका अतिशय—अतिशय क्या-क्या हैं जिन अतिशय सहित सद्गति प्राप्त होती है। पूजा, प्रतिष्ठा, इज्जत मिल जाना, जैसे इन्द्र हुएतो अनेक देवोंके द्वारा आदरणीय हुए, बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजा महाराजा हुएवेभी लोगोंके द्वारा आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। अथवा योगीजन हुएतो उस योग अवस्थामें आदर प्राप्त करते हैं। सो पूजा, इज्जत, यश जहां अतिशय पाया जाता है ऐसे अतिशयोंसे युक्त अभ्युदयको प्राप्त होते हैं धर्मके प्रभावसे। एक अतिशय अर्थका भी है, धनिकहो जाना, जैसे मनुष्य प्रायःदो बातोंकी कल्पना करते हैंकि मैं राजा होऊंया करोड़पति होऊं। कुछ सुन रखाहोतो मैं देवेन्द्र होऊं, ऐसाभी सोचने लगते हैं। तो यह लोकमें आश्चर्यसा माना जाता है। तो धनका लाभ होना यहभी सद्धर्मका फल है, जब-जब लोकवैभवकी बात कही तब तब यह अर्थ लेनाकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

रत्नत्रय जिस आत्मामें है उसमेंजो राग रह गया है वह राग व्यवहार धर्म कहलाता है। जैसे पूजा करना, तप करना यह सब व्यवहार धर्म है,तो वास्तविक धर्मके प्रसंगमें इन व्यवहार धर्मोंमेंभी इतना माहात्म्य हैकि लौकिक अभ्युदय इनके द्वारा प्राप्त होता है। ऐसी बात सुनकर व्यवहार बनाना अर्थात् शुभ रागपर आग्रह न करना किन्तु यह जाननाकि इस शुभ रागमें, व्यवहार धर्ममें निश्चय धर्मके प्रसंगमें यह माहात्म्य है तब निश्चय धर्मकी दृष्टि और आस्था करना और उस रूप अपना लक्ष्य बनाना। तो विशेष धनिकहो जाना, कोट्याधीशहो जाना यह लौकिक अतिशय है। अभ्युदय है यहभी धर्म द्वारा प्राप्त होता है। मनुष्योंको अपने जीवनमें सदैव उच्च विचार रखना चाहिए। किसी जीवको मेरे द्वारा बाधा नहो, चाहे किसी प्रसंगमें खुद दुःखीहो जाएतो वह अपना दुःख अपनेको समझाकर मिटा लेगा, किन्तु अपनी कोई चेष्टा ऐसीन होकि जिससे दूसरोंको बाधा पहुंचे, जितना अपनेसे बने उतना धर्म कार्योंमें सहयोग दें, पर ऐसा कभी मनमें कषाय न लानाकि दूसरेके द्वारा कोई धर्म कार्य बन रहा हैतो उसमें अड़चन डालें, विघ्न डालें, क्योंकि धर्म प्रसंगमें ऐसाभी कभी कभी चित्तमें कषायभाव जग जाता हैकि यह कार्य मेरे द्वारा होतो ठीक है, दूसरेका नामहोतो वह नहीं सहा जाता। तोदो बातोंका जीवनमें मुख्य ध्यान रखना हैकि एकतो अपनी चेष्टावृत्ति द्वारा किसी दूसरेको बाधा न पहुंचे और कोई कैसेभी व्यवस्था बनाता रहता हैतो उसके धर्म में विघ्न न डालें, दूसरे व स्वयं यथा शक्ति धर्मकार्यों में सहयोग करें येदो बातें जीवनमें रहेंतो समझोकि वह अपनी गृहस्थीकी परिस्थितिमें धर्म लाभका ही काम कर रहा है। तो ऐसा धर्मका फल है पूजा प्रतिष्ठा पाना और लौकिक धन वैभव सम्पदा प्राप्त होना।

सद्धर्मके फलमें आज्ञा व ऐश्वर्यका लौकिक अतिशय—लौकिक अतिशय आज्ञा और ऐश्वर्यभी है। दूसरे जीवों पर आज्ञा चले, ऐसी आज्ञा करने लायक महत्त्वपा लेना यहभी सद्धर्मका फल है। ऐश्वर्य जिसमें कुछ पराधीनता न रहनी पड़े। सब कुछ सुविधाएँ अपने आपको प्राप्त हों जिससे किसीभी कार्यके लिए दूसरों की आधीनता न करनी पड़े। ऐसे वातावरणको कहते हैं ऐश्वर्य। जहां ऐश्वर्य होता है वहां आज्ञा देने लायक महत्ता स्वयं प्राप्तहो जाती है। इन अभ्युदयोंको बता रहे हैं लौकिक दृष्टिसे भले हैं। परमार्थ दृष्टिसे देखा जाएतो यह सबभी क्लेश है। आज्ञा मानने वाला पुरुष जितना कष्टमें नहीं है उससे अधिक कष्टमें रहता है आज्ञा देने वाला पुरुष। फिरभी लौकिक दृष्टिमें महत्तातो आज्ञा देने वालेकी होती है। वह सब पुण्यका फल है। तो ऐसा सुख सुविधाका प्रसंग, ऐसा लौकिक अतिशय उस प्राप्त पुण्यके फलसे प्राप्त होता है।

सद्धर्मके फलमें विशिष्ट बल आदिका लौकिक अतिशय—बल प्राप्त होना लौकिक अभ्युदय है। पुराणोंमें सुना जाता हैकि श्रीपाल कोटिभटथे अर्थात् एक करोड़ योद्धावोंमें जितना सामर्थ्य होता है उतना उनमें था। और भी अनेकों बड़े-बड़े बलशाली लोग सुने जाते हैं तो शरीरका बल आना यहभीतो सद्धर्मका फल है। अर्थात् धर्मयुक्त आत्मामें शुभराग वशजो पुण्य आया उसका फल है। जितनी बातें घमंड करनेके लिए आश्रयभूत होती हैं समझ लीजिएकि वह सब वैभव पुण्यके प्रतापसे प्राप्त होता है। सो कोई मनुष्य इन सब वैभवोंको प्राप्त करके यदि दूसरों पर अन्याय करेतो ऐसा पाप करने वाला पुरुष अब कहां जाएगा? नारकादिक दुर्गतियोंमें जाएगा। तो एक निगाहसे अगर देखेंतो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुण्योदयने साक्षात् तो नहीं मगर परम्परया नरक भेजा। कैसे? उस पुण्योदयसे वैभव ऐश्वर्य बना, उससे मतवाले हुए, अन्याय किया और दुर्गतिमें गए। सो यद्यपि साक्षात् पुण्यने नहीं भेजा पर पुण्यफल पाकर यदि यह विवेकी नहीं रहतातो यह संसारमें दुर्गतियोंमें जन्म लेता है। परन्तु जहां सद्धर्मका प्रसंग मिला है और वहां पुण्यसे जो वैभव मिला हैतो उसमें धारा धर्मकी रहती है और धर्मकी आराधनासे यह मोक्षके अभ्युदयको प्राप्त होता है। लोकमें अनेक आज्ञाकारी परिजन व भोग सुविधाएँ मिलना यह भी अतिशय है, लोक में आदरसे देखने योग्य बात है। तो ऐसी भोग सुविधाएँ इन्द्रियविषय, देहके आराम, लोगों द्वारा एक धनी इज्जत, ये सारी बातें सद्धर्मके साथ हुए व्यवहार धर्मके फल हैं। समाधिमरणमें रहने वाला पुरुष इस प्रकार धर्मका चिन्तन करता है और अपने आपके आत्माको सावधान करता है जिससेकि अपने इस सहज आत्मस्वरूपमेंही रमे। इस प्रकार समंतभद्राचार्यने समाधिमरणके प्रसंगमें उपदेश किया है।

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना यह भाऊं।
देहान्त के समय में, तुमको न भूल जाऊं॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मकीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी श्रीमद् 'सहजानन्द' महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतम राम ॥टेक ॥

१

मैं वह हूं जो हैं भगवान। जो मैं हूं वह हैं भगवान ॥
अन्तर यही ऊपरी जान। वे विराग यहं रागवितान ॥

२

मम स्वरूप है सिद्ध समान। अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ॥
किन्तु आशवश खोया ज्ञान। बना भिखारी निपट अजान ॥

३

सुख-दुख दाता कोई न आन। मोह राग रुष दुखकी खान ॥
निजको निज परको पर जान। फिर दुखका नहिं लेख निदान ॥

४

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम। विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ॥
राग त्यागि पहुंचूं निजधाम। आकुलताका फिर क्या काम ॥

५

होता स्वयं जगत परिणाम। मैं जगका करता क्या काम ॥ दूर हटो परकृत परिणाम। "सहजानन्द" रहूं अभिराम ॥

Version 1